Ācārya Kumudacandra's

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

आचार्य कुमुदचन्द्र विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

(श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र)

Divine Blessings:
Ācārya 108 Viśuddhasāgara *Muni*

VIJAY K. JAIN

Ācārya Kumudacandra's

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

आचार्य कुमुदचन्द्र विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

(श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र)

Ācārya Kumudacandra's

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

आचार्य कुमुदचन्द्र विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

(श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र)

Divine Blessings:

Ācārya Viśuddhasāgara *Muni*

Edited and Translated by:

Vijay K. Jain

Front cover:

Depiction of the image of
Lord Pārśvanātha,
the twenty-third *Tīrthaṅkara,*
at the sacred place of pilgrimage,
Shri Digambara Jain Siddha Ksetra,
Sonagiri, Dist. Datia (M.P.).

Pic by Vijay K. Jain (2019)

Ācārya Kumudacandra's

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

आचार्य कुमुदचन्द्र विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

(श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र)

Edited and Translated by:
Vijay K. Jain

Copyright © 2024. Vijay Kumar Jain

ISBN: 978-93-6076-239-1
Rs. 250/-

Published 2024, by:
Vijay Kumar Jain
B-13, MDDA Colony, Dalanwala, Dehradun-248001 (Uttarakhand), India

Printed at:
Vikalp Printers
Anekant Palace, 29 Rajpur Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand), India
E-mail: vikalp_printers@rediffmail.com

DIVINE BLESSINGS
मंगल आशीर्वाद -
परम पूज्य दिगम्बराचार्य श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज

विश्व वसुन्धरा पर श्रमण संस्कृति अनादि-अनन्त आद्य संस्कृति है; यह सर्व विधाओं से विभूषित संस्कृति है। न्याय-नीति, सिद्धान्त, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, गणित, निमित्त-शास्त्र, व्याकरण, भाषा-विज्ञान जैसी अनेक विधाओं से सम्पन्न जैन श्रमण संस्कृति है। भक्ति-साहित्य भी विशद-विशाल है।

पूज्यों के गुणों में जो अनुराग है उसका नाम भक्ति है। वन्दना एवं स्तुति स्तवन के माध्यम से भक्ति को प्रकट किया जाता है, जो दो प्रकार से है - द्वैत-भक्ति और अद्वैत-भक्ति, अथवा व्यवहार-भक्ति और परमार्थ-भक्ति अर्थात् निश्चय-भक्ति। पञ्च परमेष्ठी की आराधना द्वैत-भक्ति अथवा व्यवहार-भक्ति है। निज चैतन्य ज्ञानघन भगवान् आत्मा में निमग्न हो जाना, पर-भावों से पूर्ण भिन्न, एकत्व-विभक्त्व शुद्ध ज्ञायक की लीनता, अद्वैत-भक्ति अथवा निश्चय-भक्ति है। निश्चय-भक्ति साक्षात् मोक्ष का कारण है। उभय भक्ति योग्यता के अनुसार ग्राहीमान् है। व्यवहार-भक्ति परम्परा से आत्म-सिद्धि का साधन है और अद्वैत-भक्ति अथवा निश्चय-भक्ति साक्षात् मोक्ष का कारण है।

ज्ञाननय, क्रियानय से युक्त वस्तु स्वभाव को समझना चाहिए। श्रमण एवं श्रावक दोनों को स्वकीय भूमिका के अनुसार भक्ति करनी चाहिए। भक्ति वन्दना एवं स्तवन के माध्यम से होती है। एक तीर्थंकर की भक्ति वन्दना कहलाती है और एक साथ चौबीस तीर्थंकरों

की भक्ति स्तवन कहलाती है। उदाहरण के लिए भक्तामर स्तोत्र तथा कल्याणमन्दिर स्तोत्र ये वन्दना हैं; स्वयम्भू स्तोत्र स्तव है। स्तव, स्तवन, स्तुति एकार्थवाची हैं। आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी स्तुति विद्या में कुशल आचार्य हैं। वे स्तुति साहित्य में सम्प्रति प्रधान आचार्य हैं जिन्होंने 'देवागम स्तोत्र', 'वृहद्स्वयम्भू स्तोत्र', 'स्तुतिविद्या' आदि ग्रन्थों का सृजन कर भक्ति कवियों की धारा में अपना विशिष्ट स्थान स्थापित किया है। आचार्यप्रवर मानतुङ्ग स्वामी ने 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना कर विश्व ख्याति को प्राप्त किया है।

उसी भक्ति साहित्य की दीर्घा में आचार्यप्रवर कुमुदचन्द्र स्वामी का नाम बहुत ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है, जिन्होंने '**कल्याणमन्दिर स्तोत्र**' लिख कर जगति के भक्त हृदयों को आनन्द प्रदान किया है। इन कवि आचार्य ने भक्ति के माध्यम से नीति-न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म जैसी सर्व विधाएँ अपने स्तोत्र में समाविष्ट की हैं। **कल्याणमन्दिर स्तोत्र** अनुपम स्तोत्र कृति है तथा अनेक चमत्कारों को प्राप्त है।

यह अनुपम स्तोत्र कृति संस्कृत तथा हिन्दी भाषी भक्तों को तो आनन्द प्रदान कर ही रही है, आंग्ल भाषी भक्त हृदय भी इस स्तोत्र के आनन्द सरोवर में निमग्न हो सकें, इस भावना से ओत-प्रोत होकर पञ्चपरमगुरु-भक्ति-हृदय, श्रुताराधक, शान्त-स्वभावी, श्रुतरस-पेयी, आंग्ल भाषा के प्रसिद्ध वरिष्ठ विद्वान् श्री विजय कुमार जैन, देहरादून, ने **कल्याणमन्दिर स्तोत्र** का हिन्दी एवं आंग्ल भाषा में अनुवाद कर विश्व क्षितिज को भक्ति का परम उपहार प्रदान किया है।

वे इसी प्रकार से वागीश्वरी की आराधना में लवनीन रहें और स्व-पर का कल्याण करें, यही शुभाशीष है।

॥ इति शुभम् भूयात् ॥

॥ ऊँ नमः सिद्धेभ्यः ॥

12 दिसम्बर, 2023 — **- दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनि**

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव,

सहारनपुर (उ.प्र.), भारत

* * *

PREFACE

BRIEF LIFE STORY OF LORD PĀRŚVANĀTHA

(THE TWENTY-THIRD *TĪRTHAṄKARA*)

Saudharma Indra, the lord of the devas, came to know through the power of his clairvoyance that only six months of the 20 *sāgaropama* life of the deva in the Prāṇata heaven *(kalpa)* were remaining and his pious soul will descend on the earth to take birth as the twenty-third *Tīrthaṅkara*, Lord Pārśvanātha. On his instruction, Kubera created a divine palace in the town of Vārāṇasī for the supremely blessed royal couple – Queen Brahmādevī (also called Queen Vāmādevī) and King Viśvasena (also called King Aśvasena) – and rained down gems for six months to welcome the Lord of the Lords on the earth. Lord Pārśvanātha was born on the eleventh day of the dark half of the month of Pauṣa – *pauṣa kṛṣṇa ekādaśī*. Lord's birth had taken place as 84,650 years passed after the birth of the twenty-second *Tīrthaṅkara*, Lord Ariṣṭanemi.

Lord Pārśvanātha attained the height of 9 *hātha** *(*4 *hātha* = 1 *dhanuṣa).*

When Pārśvanātha was 16 years old, He had gone to a nearby

---

* Some basic units of length measurement are as under:

24 *utsedhāṅgula*	= 1 *hātha*
4 *hātha*	= 1 *dhanuṣa* (also known as *danḍa* or *nāḍī*)
(1 *dhanuṣa*	≈ 5.28 ft. or 1.61 m.)
2000 *dhanuṣa*	= 1 *kosa*
4 *kosa*	= 1 *yojana*

While referring to continents, oceans and cosmic distances, Jaina cosmology employs the measure of *mahāyojana* (therein termed as *yojana* only) which equals 500 conventional *yojana*. Thus, when the Scripture refers to the diameter of Jambūdvīpa as 1 lakh *yojana*, it means 50000000 conventional *yojana* or 200000000 *kosa*.

forest, with young deva friends *(devakumāras)*, for recreation. His staunch enemy from previous births – then named Kamaṭha – and now His maternal grandfather, King Mahīpāla, was performing ill-conceived austerities and sacrificial rites in the forest. On seeing Pārśvanātha, Mahīpāla got angry as the child had not saluted and greeted him. Mahīpāla started to cut a tree for firewood. Pārśvanātha had clairvoyance from birth and told Mahīpāla not to cut the tree as there was a cobra couple in its hollow. Infuriated further with the unsolicited advice of the boy, Mahīpāla cut the tree with a strong blow of his axe. Sure enough, the cobra couple was there, cut into two, weltering for breath. The cobra couple, having had a pious death in the presence of the *Tīrthaṅkara* Child, was born as Dharaṇendra deva and Padmāvatī devī in the Residential *(Bhavanavāsī)* class of devas. Mahīpāla died after some time and became a Stellar *(jyotiṣa)* deva called Śambara.

Ācārya Guṇabhadra's *Uttarapurāṇa:*

जातः प्राङ्मरुभूतिरन्विभपतिर्देवः सहस्त्रारजो
विद्येशोऽच्युतकल्पजः क्षितिभृतां श्रीवज्रनाभिः पतिः ।
देवो मध्यममध्यमे नृपगुणैरानन्दनामाऽऽनते
देवेन्द्रो हतघातिसंहतिरवत्वस्मान्स पार्श्वेश्वरः ॥७३ : १६९॥

पार्श्वनाथ का जीव पहले मरुभूति मन्त्री हुआ, फिर सहस्त्रार स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर विद्याधर हुआ, फिर अच्युत स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ, फिर मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ, वहाँ से आकर राजाओं के गुणों से सुशोभित आनन्द नाम का राजा हुआ, फिर आनत स्वर्ग में इन्द्र हुआ और तदनन्तर घातिया कर्मों के समूह को नष्ट करने वाला भगवान् पार्श्वनाथ हुआ।

The soul of Pārśvanātha was born as the courtier Marubhūti, then a celestial deva in Sahasrāra, from there it became a Vidyādhara king, then a celestial deva in Acyuta, then a king-of-kings *(cakravartī)* named Vajranābhi, then a superior-deva *(ahamindra)* in the Middle Graiveyaka, then a king named Ānanda who was endowed with

all royal attributes, then a celestial deva in Anata*, and finally it became Lord Pārśvanātha, the destroyer of the inimical *(ghātiyā)* karmas.

The sequence of the incarnations of Kamaṭha (finally, Śambara deva) pitted against his then younger brother Marubhūti (finally, Lord Pārśvanātha) is tabulated below.

The Ten Incarnations of Marubhūti and Kamaṭha			
Sr. No.	***Incarnations of Marubhūti***	***Incarnations of Kamaṭha***	***Remarks***
1.	Marubhūti	Kamaṭha	Kamaṭha killed his younger brother Marubhūti
2.	Wild elephant, named Vajraghoṣa who adopted vows of the householder	Snake of Kukkuṭa genus	The Kukkuṭa snake killed the elephant Vajraghoṣa
3.	Denizen of the twelfth celestial region *(svarga)* called Sahasrāra	Denizen of the fifth infernal region *(naraka)* called Dhūmaprabhā	Both had the age of 16 *sāgara* (a *sāgara* is an immeasurably long period of time)
4.	Vidyādhara king named Raśmivega, who adopted asceticism	Python *(ajagara)*	The python *(ajagara)* killed Raśmivega, the ascetic

* The ***'Mahāpurāṇa'*** by *Mahākavi* Puṣpadanta mentions that the soul of Lord Pārśvanātha had descended from the Prāṇata heaven *(kalpa)*. [see, अपभ्रंश मूल सम्पादन - डॉ. पी. एल. वैद्य, हिन्दी अनुवाद - डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (2003), **महाकवि पुष्पदन्त विरचित महापुराण,** भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, द्वितीय संस्करण, पाँचवाँ भाग; ch. 94, p. 276.]

5.	Denizen of the sixteenth celestial region *(svarga)* called Acyuta	Denizen of the sixth infernal region *(naraka)*	Both had the age of 22 *sāgara*
6.	King-of-kings *(cakravartī)* named Vajranābhi, who adopted asceticism	A *bhīla* (a cruel mountain-tribe), called Kuraṅga	The *bhīla* caused severe calamities *(upasarga)* for the meditating ascetic Vajranābhi
7.	Superior-deva *(ahamindra)* in the Middle Graiveyaka	Denizen of the seventh infernal region *(naraka)*	The age of the *ahamindra* was 27 *sāgara*
8.	King named Ānandakumāra; he took to asceticism and attained the name-karma of the *Tīrthaṅkara*	Lion in the forest named Kṣīravana	The lion killed the ascetic Ānandakumāra who was engrossed in dharma-meditation *(dharma-dhyāna)*
9.	Denizen of the fourteenth celestial region *(svarga)* called Prāṇata	Denizen of the fifth infernal region *(naraka)*	Had the age of 20 *sāgara* in Prāṇata *svarga*
10.	Born as Lord Pārśvanātha to Queen Brahmādevī and King Viśvasena of Vārāṇasī on the eleventh day of the dark half of the month of *Pauṣa*.	King Mahīpāla, the maternal grand-father of Lord Pārśvanātha. After death, he became a stellar *(jyotiṣa)* deva called Śambara.	The incarnations of Kamaṭha, thus, continued enmity, whenever possible, against various incarnations of Lord Pārśvanātha.

Lord Pārśvanātha spent 30 years as youth *(kumārakāla)*. Once He was reflecting on His past incarnations and realized that only through the subjugation of the five senses can one get rid of worldly sufferings. He renounced all worldly pursuits and adopted the path to liberation by accepting the rigorous austerities as prescribed in the Holy Scripture. Laukāntika devas from Brahmaloka came down to worship the Lord.

After spending 4 months in holy asceticism *(chadmasthakāla),* Lord Pārśvanātha established Himself in the karma-destroying pure concentration *(śukla dhyāna)* in a dense forest. Incidentally, the craft of Śambara deva which was hovering in the sky above the forest stopped due to the divine influence of Lord Pārśvanātha. The deva (Mahīpāla's incarnation) became extremely angry and started to disturb the concentration of the Lord through terrible thunderstorm – frightening flashes of lightning, thunderbolts, strong winds, and torrential rain. Dharaṇendra deva immediately came to know of the disturbance, rushed to the spot, and covered Lord Pārśvanātha with the bower-shaped spread of a large number of serpent-hoods. Padmāvatī devī also spread a divine canopy over the venerable Lord.

Lord Pārśvanātha completed His pure concentration and attained the all-embracing knowledge – Omniscience *(kevalajñāna)*. The devas erected a heavenly Pavilion *(samavasaraṇa)* befitting Lord's glory to celebrate the grand event. The Śambara deva, shedding his animosity of past lives, also came in the *samavasaraṇa,* made deep obeisance to the Lord and adopted the virtue of Right Belief in His presence.

The time period of Lord's renunciation *(saṁyamakāla)* was 70 years out of which He spent 69 years and 8 months as Omniscient *(kevalakāla)*.

Lord Pārśvanātha lived for 100 years and attained liberation *(nirvāṇa)* from Shri Sammed Shikharji on the seventh day of the bright half of the month of Śrāvaṇa – *śrāvaṇa śukla saptamī.*

Chief among the Lord's Apostles *(gaṇadhara)* was sage Svayambhū Svāmī.

Your adoration, O Lord Pārśvanātha, has the power to wash away the dirt of karmas that defiles our souls.

ĀCĀRYA KUMUDACANDRA AND *KALYĀṆAMANDIRA STOTRA*

Little is known about the life and works of *Ācārya* Kumudacandra, also known as *Ācārya* Siddhasena Divākara. Thanks to his *magnum opus* composition *Kalyāṇamandira Stotra,* his name is taken with great reverence by the members of the Jaina community, both Digambara and Śvetāmbara.

Authors and researchers are not unanimous as regards the time of *Ācārya* Kumudacandra. Muni Ajitasāgara[*] has mentioned that *Ācārya* Kumudacandra should have graced this earth around the sixth century CE. However, Dr. Darbarilal Kothia[†], in his Foreword to an edition of *Kalyāṇamandira Stotra* has earmarked his time as the 12th century of Vikrama Saṃvat (VS)[@]. He avers (original in Hindi, as translated into English):

> "*Ācārya* Kumudacandra's general and particular introduction, including his time, should be investigated by the researchers. It is said that an erudite scholar of the 12th century of Vikrama Saṃvat (VS), Vādideva Sūri had had a debate with *Ācārya* Kumudacandra,

* सम्पादक – पं. अभय कुमार शास्त्री, पद्यानुवाद – मुनि अजितसागर (2015), **श्रीकुमुदचन्द्र आचार्य विरचित कल्याण मन्दिर स्तोत्र (कल्याण मन्दिर विधान)**, प्रकाश शोध संस्थान, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, पृ. 3.

† लेखक – पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद' (वीर नि. सं. 2499), **श्री कुमुदचन्द्राचार्य विरचित कल्याणमन्दिर स्तोत्र**, मोहनलाल जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर, पृ. 11.

@ Gregorian Year 2000 CE corresponds with Year 2057 in the *Vikrama Saṃvat* (VS) calendar.

a *Digambara* ascetic, on subjects like 'the liberation of females'. If the same *Ācārya* Kumudacandra is the composer of this treatise, his time should be established as the 12th century of Vikrama Saṃvat (VS)."

Kalyāṇamandira Stotra is a composition in adoration to the twenty-third *Tīrthaṅkara* Lord Pārśvanātha; it is, therefore, also known as the *'Pārśvanātha Stotra'*.

In verse 2 of the composition, *Ācārya* Kumudacandra avers that this adoration is in reverence to the one who was like the smoke-betokened fire that burnt to ashes the arrogance of Kamaṭha. In verses 31, 32 & 33, he further elaborates how Lord Pārśvanātha faced with equanimity the evil calamities caused by the incarnation of Kamaṭha. The evil affliction that Kamaṭha caused to Marubhūti which culminated in the calamity caused by the Śambara deva to Lord Pārśvanātha, engaged in meditation, is well documented in the Jaina literature.

Kalyāṇamandira Stotra, a highly rhythmic and melodious composition, comprises 44 verses. The whole composition, except verse 44, is in the metre known as *'Vasantatilakā'*. The salient feature of this metre is that the verse comprises four parts, each with fourteen letters. The entire verse, thus, has fifty-six letters.The last verse (No. 44) is in the metre known as *'Āryā'*.

Another great composition, *Ācārya* Mānatuṅga's *'Bhaktāmara Stotra'* – in adoration to Lord Ādinātha, the first *Tīrthaṅkara* – needs mention here since that too is read with great devotion by the worthy devotees, both ascetics and householders, Digambara and Śvetāmbara. *Bhaktāmara Stotra* has 48 verses and here also the metre *'Vasantatilakā'* has been used.

Kalyāṇamandira Stotra describes, from verse 19 to 26, the eight Divine Splendours *(prātihārya)* – the Aśoka tree, the shower of flowers, the divine-voice, the hand-fans, the (bejeweled) throne, the halo, the (dulcet) sound of kettledrums and the three-tier canopy – that must embellish the presence of Lord Jina. *Bhaktāmara Stotra*,

too, describes these eight Divine Splendours of Lord Jina, from verse 28 to 35. In the present volume, the corresponding verses from *Bhaktāmara Stotra* have been juxtaposed to provide a little extra delight to the reader.

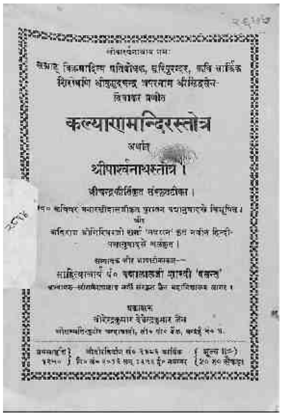

कल्याणमन्दिरस्तोत्र

अर्थात्

श्रीपार्श्वनाथस्तोत्र ।

Although many learned scholars have provided us the meaning of the original verses (in Sanskrit) of *Kalyāṇamandira Stotra,* the one who merits a special and grateful mention here is *Pt.* Pannalal Shastri 'Vasant'. In his composition – first published in year 1950, with second edition dated November 1959 – he has provided not only the most useful Sanskrit commentary by *Śrī* Candrakīrti but also the literal-meaning *(anvayārtha)* and the objective-meaning *(bhāvārtha)* against each verse.

I have unashamedly excerpted from *Pt.* Pannalal Shastri's work while undertaking the present translation. Errors committed in improper reproduction are mine; wherever I could improve upon the text, the credit goes to the foundation provided to me by my predecessor.

By and large, commendable-attachment *(praśasta-rāga)* is based on devotion *(bhakti)*. For those aspiring to tread the path to liberation – the householders *(śravaka)* – the only means to escape the web of evil dispositions that is ever-ready to entangle them is to take refuge in the Lotus-Feet of Lord Jina (the *Tīrthaṅkara)* and His Doctrine. They must incessantly strive for observance of commendable-attachment *(praśasta-rāga)*. Devotion *(bhakti)* to Lord Jina and other Supreme-Beings *(parameṣṭhī)* is the most potent means of observing commendable-attachment.

My endeavour has been to make this slim volume a useful reference text not only for the Hindi-loving scholars, but also for the readers interested primarily in its English rendering.

A SUBMISSION

It is imperative that due to the lack of my understanding and also to my inadvertence, but certainly not due to my intention and wrong-belief *(mithyātva)*, learned scholars would be able to find in this text errors and omissions in respect of typos, grammar and expression; I shall remain ever apologetic for such imperfections and seek from them forbearance and forgiveness.

Traditionally, the following verse is found at the end of most editions of the great Scripture *Ācārya* Umāsvāmī's *Tattvārthasūtra*:

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम् क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

('तत्त्वार्थसूत्र' के समापन पर प्रचलित ज्ञप्ति)

I seek forgiveness from all noble souls for any errors due to missing letters, accents, words, vowels, consonants, compounds, and phonetic requisites in this text. The Scripture is like an ocean; who can swim across it?

It is due to my devotion to the Scripture *(āgama, jinavāṇī)* and my hope that the outcome will help in propagation of the true Doctrine, so scarce in modern-day literature, that, notwithstanding my meagre knowledge, I have embarked on this project.

ĀCĀRYA VIŚUDDHASĀGARA

His vastness of knowledge – in its scope as well as depth – can easily be inferred from the eloquence with which he delivers his discourses *(pravacana)* on the most profound and intractable topics of the Jaina Doctrine. Such *Ācārya* Viśuddhasāgara has showered me with his divine blessings during this project. His divine blessings wondrously made the process and the end-result most gratifying for me.

I make worshipful obeisance not only to *Ācārya* Viśuddhasāgara but to each of the 8,99,99,997 supreme-ascetics *(bhāvaliṅgī-muni)*, from the sixth *(pramatta-saṃyata)* to the fourteenth *(ayogakevalī)* stage-of-spiritual-development *(guṇasthāna)*, present in the human-world *(manuṣya-loka)* comprising the two-and-a-half continents, starting from Jambūdvīpa and up to the mountain range of Mānuṣottara in the centre of Puṣkaradvīpa.*

December, 2023
Dehradun, India

– Vijay K. Jain

* * *

SPONSORSHIP

Mrs. Sonal Jain Chhabra and Ms. Malika Jain, my daughters, have graciously provided sponsorship – with a mandate to 'go for the best' – for the printing of this sacred text.

My appreciation *(anumodanā)*.

– ***VKJ***

* See, *Ācārya* Nemicandra's *Gommaṭasāra Jīvakāṇḍa,* Part-2, p. 869-870.

VIJAY K. JAIN – BIOGRAPHICAL NOTE

Having had his schooling from Mhow and Bhopal in Madhya Pradesh, Vijay K. Jain (b. 1951) did his graduation in Electronics Engineering from Institute of Technology, Banaras Hindu University, and Post-Graduation in Management from Indian Institute of Management, Ahmedabad.

An independent researcher, Vijay K. Jain has authored several books, and edited and translated into English a number of profound Jaina texts.

1. *Marketing Management for Small Units* (1988).
2. **जैन धर्म : मंगल परिचय** (1994).
3. *From IIM-Ahmedabad to Happiness* (2006).
4. *Āchārya Umāsvāmi's* ***Tattvārthsūtra*** *– With Hindi and English Translation* (2011).
5. *Āchārya Kundkund's* ***Samayasāra*** *– With Hindi and English Translation* (2012).
6. *Shri Amritachandra Suri's* ***Puruṣārthasiddhyupāya*** *– With Hindi and English Translation* (2012).
7. *Ācārya Nemichandra's* ***Dravyasaṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes* (2013).
8. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Iṣṭopadeśa*** *– The Golden Discourse* (2014).
9. *Ācārya Samantabhadra's* ***Svayambhūstotra*** *– Adoration of the Twenty-four Tīrthaṅkara* (2015).
10. *Ācārya Samantabhadra's* ***Āptamīmāṃsā (Devāgamastotra)*** *– Deep Reflection On The Omniscient Lord* (2016).
11. *Ācārya Samantabhadra's* ***Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra*** *– The Jewel-casket of Householder's Conduct* (2016).
12. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Samādhitantram*** *– Supreme Meditation* (2017).
13. *Ācārya Kundakunda's* ***Pravacanasāra*** *– Essence of the Doctrine* (2018).
14. *Ācārya Umāsvāmī's* ***Tattvārthasūtra*** *– With Explanation in English from Ācārya Pūjyapāda's* ***Sarvārthasiddhi*** (2018).
15. *Ācārya Kundakunda's* ***Niyamasāra*** *– The Essence of Soul-*

adoration (With Authentic Explanatory Notes) (2019).

16. *Ācārya Guṇabhadra's* ***Ātmānuśāsana*** *– Precept on the Soul* (2019).
17. *Ācārya Kundakunda's* ***Pañcāstikāya-saṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes in English* (2020).
18. आचार्य समन्तभद्र विरचित **युक्त्यनुशासन** – अन्वयार्थ एवं व्याख्या सहित (2020).
19. आचार्य समन्तभद्र विरचित **स्तुतिविद्या (जिनशतक, जिनस्तुतिशतं)** (2020).
20. English translation of: दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर विरचित **सत्यार्थ-बोध**; *Ācārya Viśuddhasāgara's* ***Satyārtha-bodha*** *– Know The Truth* (2021).
21. *Ācārya Māṇikyanandi's* ***Parīkṣāmukha Sūtra*** *– Essence of the Jaina Nyāya* (2021).
22. *Ācārya Kundakunda's* ***Bārasa Aṇuvekkhā*** *– The Twelve Contemplations (With Authentic Explanatory Notes)* (2021).
23. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Bhakti Saṃgraha*** *– Collection of Devotions* (2022).
24. *Ācārya Kundakunda's* ***Samayasāra*** *– With Hindi and English Translation* (2022), Second Edition.
25. *Ācārya Nemichandra's* ***Dravyasaṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes* (2022), Second Edition.
26. *Ācārya Mānatuṅga's* ***Bhaktāmara Stotra*** *– With Hindi and English Rendering* (2023).
27. *Ācārya Kundakunda's* ***Rayaṇasāra*** *– The Quintessential Jewel* (2023).
28. *Ācārya Kumudacandra's* ***Kalyāṇamandira Stotra*** *– Adoration of Lord Pārśvanātha* (2024).

Mr. Jain is the proprietor of Vikalp Printers, a small, high-end printing and publishing firm, based in Dehradun, India.

* * *

"वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥"

CONTENTS

मंगल आशीर्वाद - श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनि ----- (V)

PREFACE – VIJAY K. JAIN ----- (VII)

VIJAY K. JAIN – BIOGRAPHICAL NOTE ----- (XVII)

Ācārya Kumudacandra's

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

Verse No.	*Head of the Verse*		*Page*
1.	कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि	---	3
2.	यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः	---	3
3.	सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-	---	6
4.	मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो	---	7
5.	अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि	---	9
6.	ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!	---	10
7.	आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन! संस्तवस्ते	---	11
8.	हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति	---	12
9.	मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!	---	13

Verse No.	*Head of the Verse*		*Page*
10.	त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव	---	14
11.	यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः	---	15
12.	स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नाः	---	16
13.	क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो	---	17
14.	त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप-	---	18
15.	ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन	---	19
16.	अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं	---	20
17.	आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या	---	21
18.	त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि	---	22
19.	धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा-	---	23
20.	चित्रं विभो! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव	---	25
21.	स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः	---	27
22.	स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो	---	29
23.	श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न-	---	31
24.	उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन	---	33
25.	भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन-	---	35

Verse No.	***Head of the Verse***		***Page***
26.	उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!	---	**37**
27.	स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन	---	**39**
28.	दिव्यस्त्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधिपाना-	---	**40**
29.	त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि	---	**41**
30.	विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वं	---	**42**
31.	प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा-	---	**44**
32.	यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीम-	---	**46**
33.	ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड-	---	**47**
34.	धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-	---	**48**
35.	अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश!	---	**49**
36.	जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!	---	**50**
37.	नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन	---	**51**
38.	आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि	---	**52**
39.	त्वं नाथ! दुःखिजनवत्सल! हे शरण्य!	---	**54**
40.	निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य-	---	**55**
41.	देवेन्द्रवन्द्य! विदिताखिलवस्तुसार!	---	**56**

Verse No.	*Head of the Verse*		*Page*
42.	**यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां**	---	**57**
43.	**इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र!**	---	**58**
44.	**जननयनकुमुदचन्द्र! प्रभास्वराः**	---	**58**

APPENDICES

1.	REFERENCES AND GRATEFUL ACKNOWLEDGMENT **संदर्भ सूची एवं कृतज्ञता ज्ञापन**	---	**61**
2.	ADORATION OF LORD PĀRŚVANĀTHA IN *'SVAYAMBHŪSTOTRA'* **भगवान् पार्श्वनाथ स्तुति - 'स्वयम्भूस्तोत्र'**	---	**63**
3.	**भगवान् पार्श्वनाथ स्तुति - 'स्तुतिविद्या'**	---	**68**
4.	GUIDE TO TRANSLITERATION	---	**72**

* * *

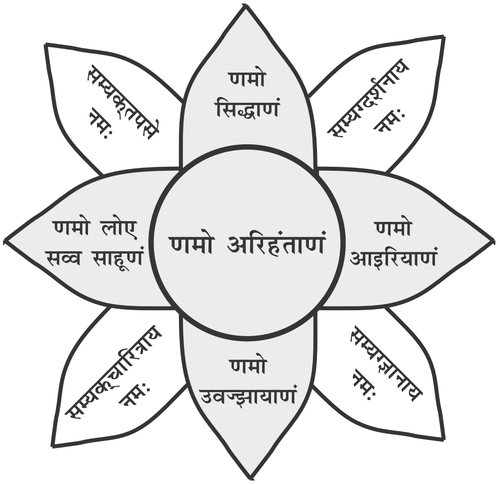

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ॥

Ācārya Kumudacandra's

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

आचार्य कुमुदचन्द्र विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

(श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र)

Pic by Vijay K. Jain (2016)

With great devotion, I make obeisance humble at the twenty-third *Tīrthaṅkara* Lord Pārśvanātha's Holy Feet – established by representation *(sthāpanā nikṣepa)* – at the 'Svarṇabhadra-kūṭa', atop the sacred hills of Shri Sammed Shikharji, Jharkhand, India, the eternal place of pilgrimage.

ॐ

Ācārya **Kumudacandra's**

Kalyāṇamandira Stotra

– Adoration of Lord Pārśvanātha

आचार्य कुमुदचन्द्र विरचित

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

(श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र)

(वसन्ततिलका छन्द)

कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।
संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥२॥ (युग्मम्)

अन्वयार्थ – **[कल्याणमन्दिरम्]** कल्याण के मन्दिर, **[उदारम्]** उदार (दाता या महान्), **[अवद्यभेदि]** पापों को नष्ट करने वाले, **[भीत अभय**

प्रदम्] भयभीत (प्राणियों) को अभय प्रदान करने वाले, [**अनिन्दितम्**] प्रशंसनीय और [**संसार सागर निमज्जद्**] संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए [**अशेष जन्तु**] समस्त जीवों के लिए [**पोतायमानम्**] जहाज के समान [**जिनेश्वरस्य**] जिनेन्द्र भगवान् के [**अङ्घ्रिपद्मम्**] चरण-कमल को [**अभिनम्य**] नमस्कार करके–

[**गरिमा-अम्बु-राशेः**] गौरव के समुद्र-रूप [**यस्य**] जिनकी (पार्श्वनाथ भगवान् की) [**स्तोत्रं विधातुम्**] स्तुति करने के लिए [**स्वयं सुविस्तृतमति**] स्वयं विस्तृत बुद्धि वाले [**सुरगुरुः**] देवों के गुरु अर्थात् बृहस्पति भी [**विभुः न (अस्ति)**] समर्थ नहीं हैं, [**कमठ स्मय धूमकेतोः**] कमठ का मान भस्म करने के लिए धूमकेतु अर्थात् अग्नि-स्वरूप, [**तस्य तीर्थेश्वरस्य**] उन तीर्थंकर भगवान् (पार्श्वनाथ) की [**किल**] आश्चर्य है कि [**अहम् एषः**] मैं (आचार्य कुमुदचन्द्र) यह [**संस्तवनम् करिष्ये**] स्तुति करूँगा।

After bowing to the Lotus Feet of Lord Jinendra who is a temple of propitiousness, benevolent, destroyer of all evils, bestower of fearlessness to the frightened, laudable, and like a life-boat for all living-beings getting submerged in the ocean of worldly-existence–

Lord Pārśvanātha, the ocean of dignity; even the possessor of immense intellect and the guru of the devas – Bṛahaspati – finds himself unable to extol whose virtues; who was like the smoke-betokened fire that burnt to ashes the arrogance of Kamaṭha; it is surprising that I (*Ācārya* Kumudacandra) have embarked on this adoration of such Lord Pārśvanātha, the Ford-maker (*Tīrthaṅkara)*.

EXPLANATORY NOTE

In the tenth previous incarnation, the soul of Lord Pārśvanātha had taken birth as Marubhūti. King Aravinda then ruled the city of Podanapura situated in the Bharata region of Jumbūdvīpa. In his kingdom lived a Brāhmaṇa by the name of Viśvabhūti who had two sons, Kamaṭha and Marubhūti. Kamaṭha was the elder brother of Marubhūti. Vasundharī was the name of the wife of Marubhūti. Both brothers were ministers in the court of King Aravinda. Marubhūti was well versed in the ways of political and social ethics whereas Kamaṭha was evil-minded and ill-behaved. Having earlier committed adultery with Vasundharī, the wife of Marubhūti, Kamaṭha finally killed his younger brother Maurbhūti. The enmity on the part of Kamaṭha against Marubhūti continued for their future incarnations till the soul of Marubhūti finally took birth, in its ninth subsequent incarnation, as Lord Pārśvanātha and attained infinite-knowledge *(kevalajñāna)*. (see also verses 31, 32 & 33 of the present volume.) [To read the life story of Lord Pārśvanātha, see, 1) Editor: *Pt.* Pannalal Jain (1968), *"Ācārya Guṇabhadra's Uttarapurāṇa"*, Second Edition, Ch. 73, pp. 429-442; or 2) Radhakrishna, K.E. (Prof.) – English Translation – (2020), *"Sri Bhagavajjinasenacharya - Gunabharacharya Virachitha Jain Mahapurana"*, Panditaratna A. Shantiraja Shastri Trust, Bengaluru-560070, Volume 6, pp. 155-191.]

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल धर्मरश्मेः ॥३॥

अन्वयार्थ – **[अधीश!]** हे स्वामिन्! **[सामान्यतः अपि]** साधारण रीति से भी **[तव]** आपके **[स्वरूपम्]** स्वरूप का **[वर्णयितुम्]** वर्णन करने के लिए **[अस्मादृशाः]** मुझ जैसे मनुष्य **[कथम्]** कैसे **[अधीशाः भवन्ति]** समर्थ हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते हैं। **[यदि वा]** अथवा जैसे **[दिवान्धः]** दिन में अन्धा रहने वाला **[कौशिकशिशुः]** उल्लू का शिशु (बच्चा) **[धृष्टः अपि (सन्)]** धृष्ट (ढीठ) होता हुआ भी **[किम्]** क्या **[धर्मरश्मेः]** सूर्य के **[रूपम्]** रूप का **[प्ररूपयति किल]** वर्णन कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता है।

O Lord! How can the (ignorant) persons like me succeed in describing your attributes, even in a general way? Or – to give an analogy – can the owlet (baby owl) which is blinded during the day and even if daring and persevering be able to describe the nature of the sun?

Explanatory Note

The owl is a night bird that can see very well at night but not during the day. *Ācārya* Kumudacandra gives the illustration of the owlet (baby owl) to highlight his ignorance and, therefore, inability to describe the nature of Lord Pārśvanātha.

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ! मर्त्यो
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥

अन्वयार्थ – [**नाथ!**] हे नाथ! [**मर्त्यः**] मनुष्य [**मोहक्षयात्**] मोहनीय कर्म के क्षय से [**अनुभवन् अपि**] अनुभव करता हुआ भी [**तव**] आपके [**गुणान्**] गुणों को [**गणयितुम्**] गिनने के लिए [**नूनम्**] निश्चय ही [**न क्षमेत**] समर्थ नहीं हो सकता है। [**यस्मात्**] क्योंकि [**कल्पान्तवान्तपयसः**] प्रलय-काल के समय जिसका पानी बाहर हो गया है, ऐसे [**जलधेः**] समुद्र की [**प्रकटः अपि**] प्रकट हुई भी [**रत्नराशिः**] रत्नों की राशि [**ननु केन मीयेत**] किसके द्वारा गिनी जा सकती है? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।

O Lord! Even with the experience a man gets on the destruction *(kṣaya)* of his deluding *(mohanīya)* karmas, he certainly finds himself incapable of recounting your attributes *(guṇa)*. It is like this: Who can count the number of gems in the ocean even after its water has been thrown out due to a severe cataclysm thereby revealing all the gems in the seabed?

Explanatory Note

On destruction *(kṣaya)* of the entire deluding *(mohanīya)* karmas, the soul is characterized by its inherent nature – *ātmasvabhāva*. Having cast off the burden of the deluding karmas, the soul ascends to the twelfth spiritual-stage

(guṇasthāna) of destroyed-delusion *(kṣīṇakaṣāya)*. Immediately thereafter the knowledge-covering *(jñānāvaraṇīya)*, the perception-covering *(darśanāvaraṇīya)* and the obstructive *(antarāya)* karmas are destroyed. And the soul attains the state of perfect-knowledge *(kevalajñāna)* with perception *(darśana)* of unimaginable splendour and magnificence. [See, Vijay K. Jain (2018), *Ācārya Umāsvāmī's Tattvārthasūtra – With Explanation in English from Ācārya Pūjyapāda's Sarvārthasiddhi*, *sūtra* 10 : 1, pp. 405-407.]

The attributes *(guṇa)* of Lord Pārśvanātha are infinite *(ananta)*. These are reflected simultaneously *(yugapat)*, like in a mirror, as objects-of-knowledge *(jñeya)* in the perfect-knowledge *(kevalajñāna)* of the supreme ascetic *(yogī)* who has destroyed the deluding *(mohanīya)* karmas, but, being infinite *(ananta)* in number, these are beyond enumeration as enumeration must take place in succession *(kramabhāvī)*.

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ! जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥५॥

अन्वयार्थ – **[नाथ!]** हे नाथ! **[(अहम्) जडाशयः अपि]** मैं जड़बुद्धि भी **[तव]** आपके **[लसद् असंख्यगुणाकरस्य]** शोभायमान असंख्यात गुणों की खानि का **[स्तवं कर्तुं]** स्तवन करने के लिए **[अभ्युद्यतः अस्मि]** उद्यत हुआ हूँ। (क्योंकि) **[किम्]** क्या **[बालः अपि]** बालक भी **[स्वधिया]** अपनी बुद्धि के अनुसार **[अम्बुराशेः]** समुद्र के **[विस्तीर्णताम्]** विस्तार को **[निजबाहुयुगम्]** अपनी दोनों भुजाओं को **[वितत्य]** फैलाकर **[न कथयति]** नहीं कहता है? अर्थात् कहता है।

O Lord! Dumb-witted me! Even I have embarked on the task of the adoration of your sparkling, innumerable attributes *(guṇa)*. It is like this: Does a child, as per his intellect, not communicate the expanse of the ocean by the act of stretching both his arms?

Explanatory Note

Words and gestures are incapable of expressing things that are colossal. *Ācārya* Kumudacandra expresses his utter inability to recount the innumerable attributes of Lord Pārśvanātha. Still, like a child who depicts the expanse of the ocean with the stretch of his arms, the *Ācārya* embarks on the venture of recounting some of the Lord's attributes through this composition.

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ।
जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं
जलपन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

अन्वयार्थ – [**ईश!**] हे प्रभो! [**तव**] आपके [**ये गुणाः**] जो गुण [**योगिनाम् अपि**] योगियों को भी [**वक्तुम्**] कहने के लिए [**न यान्ति**] नहीं प्राप्त होते – अर्थात् जिनका कथन योगीजन भी नहीं कर सकते, [**तेषु**] उनमें [**मम**] मेरा [**अवकाशः**] अवकाश अर्थात् सामर्थ्य [**कथम् भवति**] कैसे हो सकता है – अर्थात् मैं उनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ? [**तत्**] इसलिए [**एवम्**] इस प्रकार [**इयम्**] मेरा यह [**असमीक्षित**] अविचारित अर्थात् बिना विचारे [**कारिता जाता**] कार्य हुआ। [**वा**] अथवा [**पक्षिणः अपि**] पक्षी भी [**निजगिरा**] स्वकीय (अपनी) वाणी से [**जलपन्ति ननु**] बोला करते हैं। (मेरा प्रयास भी उसी प्रकार का है।)

O Lord! When your attributes *(guṇa)* are not accessible to (or, describable by) even the supreme-ascetics *(yogī)*, how can I hold a place in that guild? (How can I describe your attributes?) Therefore, this effort of mine amounts to work without thinking. Or, the birds too communicate through their twittering. (My effort is similar to that.)

Explanatory Note

Ācārya Kumudacandra admits that this effort of his is taking place without thinking on his part; otherwise, it would not have been possible for him to undertake this Herculean task.

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन! संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान्निदाघे
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

अन्वयार्थ – [**जिन!**] हे जिनेन्द्र! [**अचिन्त्यमहिमा**] अचिन्त्य है माहात्म्य जिसका ऐसा [**ते**] आपका [**संस्तवः**] स्तवन (तो) [**आस्ताम्**] दूर रहे, [**भवतः**] (केवल) आपका [**नाम अपि**] नाम भी [**जगन्ति**] जीवों की [**भवतः**] संसार से [**पाति**] रक्षा कर देता है – अर्थात् संसार के दुःखों से बचा देता है। [**निदाघे**] ग्रीष्मकाल में [**तीव्र आतपोपहत**] तीव्र घाम (धूप) से सताये हुए [**पान्थ जनान्**] पथिक जनों को [**पद्मसरसः**] कमलों के सरोवर का [**सरसः**] सरस अथवा शीतल [**अनिलः अपि**] पवन भी [**प्रीणाति**] सन्तुष्ट करता है। (कमल-युक्त सरोवर का शीतल जल तो सुख पहुँचाता ही है, उस सरोवर से स्पर्शित पवन भी सुख प्रदान करती है।)

O Lord Jinendra! The magnificence of your adoration is beyond imagination; just the articulation of your name saves the living-beings from worldly suffering. During the summer-time, even the cool breeze from the lotus-lake provides relief to the travellers tormented by the scorching heat of the sun. (The cool water of the lotus-lake, no doubt, provides relief to the travellers; even the cool breeze sweeping over the lake provides succour to them.)

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली भवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजंगममया इव मध्यभाग-
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

अन्वयार्थ - **[विभो!]** हे स्वामिन! **[हृद्वर्तिनि त्वयि (सति)]** हृदय में आपके विराजमान रहते हुए **[जन्तोः]** जीवों के **[निबिडाः अपि कर्मबन्धाः]** अत्यन्त सघन कर्मों के बन्धन भी **[क्षणेन]** क्षण भर में **[शिथिली भवन्ति]** शिथिल पड़ जाते हैं। (कैसे?) **[इव]** जैसे **[वनशिखण्डिनि अभ्यागते]** वन-मयूर के आने पर **[चन्दनस्य मध्यभागम् (सति)]** चन्दन-तरु के मध्य-भाग में लिपटे हुए **[भुजंगममया (बन्धाः)]** सर्पों के बन्धन **[सद्यः]** शीघ्र ही (शिथिल पड़ जाते हैं)।

O Lord! The bonds of even the most intractable evil-karmas get loosened instantly when the living-beings establish you in their hearts. It is like this: Immediately on arrival of the wild-peacock, the serpents clinging to the centre of the sandalwood trees loosen their grip.

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाषु पशवः प्रपलायमानैः ॥९॥

अन्वयार्थ – **[जिनेन्द्र!]** हे जिनेन्द्रदेव! **[इव]** जैसे **[स्फुरिततेजसि]** पराक्रमी और तेजस्वी **[गोस्वामिनि]** गोपालक अर्थात् भूपाल अथवा राजा के **[दृष्टमात्रे]** दिखते ही **[प्रपलायमानैः]** भागते हुए **[चौरैः]** चोरों के द्वारा **[आशु]** शीघ्र ही **[पशवः]** पशुधन को **[मुच्यन्त]** छोड़ दिया जाता है, (उसी प्रकार) **[त्वयि वीक्षिते अपि]** आपके दर्शन होने पर भी **[मनुजाः]** मनुष्य **[रौद्रैः]** रौद्र अथवा भयंकर **[उपद्रव शतैः]** सैकड़ों उपद्रवों से **[सहसा एव]** तत्काल ही (छोड़ दिये जाते हैं अथवा मुक्त हो जाते हैं)।

O Lord Jinendra! As the fleeing thieves instantly leave behind the (stolen) livestock as soon as they get to see the gallant and illustrious king, similarly, hundreds of dreadful calamities are left behind as soon as the men get to see you.

Explanatory Note

In this verse *Ācārya* Kumudacandra emphasises that it is essential for the householder *(śrāvaka)* to visit regularly the Jina-temple *(jina-mandira)*, the abode of the Jina-idol *(jina-pratima, jina-bimba)*; this is the sure way to get rid of his/her evil karmas.

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥१०॥

अन्वयार्थ - **[जिन!]** हे जिनेन्द्रदेव! **[त्वं भविनां]** आप संसारी जीवों के **[तारकः कथं]** तारने वाले कैसे हो सकते हैं? **[यत्]** क्योंकि **[उत्तरन्तः]** (संसार-समुद्र से) पार होते हुए **[त एव]** वे (संसारी जीव) ही **[हृदयेन]** हृदय से **[त्वाम् उद्वहन्ति]** आपको तिरा ले जाते हैं! **[यद्वा]** अथवा, ठीक है कि **[दृतिः]** मशक **[यत् जलम् तरति]** जो जल में तैरती है, **[सः एष]** उसका ही **[नूनम्]** निश्चय से **[अन्तर्गतस्य मरुतः]** भीतर स्थित वायु का **[अनुभावः किल]** प्रभाव है (जो जीव को जल से पार कराता है)। अर्थात् आपको हृदय में धारण करने वाले पुरुष आपके ही प्रभाव से संसार-समुद्र से पार होते हैं।

O Lord Jinendra! How are you the saviour of the worldly-beings? It seems that the worldly-beings, while crossing the worldly-ocean, establish you in their hearts and carry you to the shore! But the fact is that it is the leathern water-bag – *maśaka* – that, being filled with air and therefore floats on water, carries the men to the shore. This establishes that the men who carry you in their hearts are able to cross the ocean of worldly-existence.

यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाऽथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्द्धरवाडवेन ॥११॥

अन्वयार्थ – (हे पार्श्वनाथ जिनदेव!) **[यस्मिन्]** जिस (काम-वासना) के विषय में **[हरप्रभृतयः अपि]** हरि, हर (विष्णु, शिव) आदि देव भी **[हतप्रभावाः (जाताः)]** प्रभाव-रहित हो गए हों, **[सः]** वह **[रतिपतिः अपि]** कामदेव भी **[त्वया]** आपके द्वारा **[क्षणेन]** क्षणमात्र में **[क्षपितः]** नष्ट कर दिया गया। **[अथ]** अथवा ठीक है कि **[येन पयसा]** जिस जल ने **[हुतभुजः विध्यापिताः]** अग्नि को बुझाया है, **[तत् अपि]** वह (जल) भी **[दुर्द्धर वाडवेन]** प्रचण्ड बड़वानल के द्वारा **[किम्]** क्या **[न पीतम्]** नहीं पिया जाता अर्थात् नष्ट कर दिया जाता?

(O Lord Pārśvanātha!) You had instantly destroyed Kāmadeva (god of love) who had vanquished (made lustreless) the great devas, including Hari and Hara (Viṣṇu and Śiva). But, it makes sense. Does even the water that extinguishes fire not get consumed by the colossal undersea-fire – *baḍavānala*?

Explanatory Note

Lord Pārśvanātha had tamed, in no time, the most intractable and obstinate enemy – the lustful desire – represented by Kāmadeva. Even the devas including Hari and Hara (Viṣṇu, Śiva) had failed to subjugate this enemy.

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना:
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः ॥१२॥

अन्वयार्थ - [**स्वामिन्**] हे स्वामी! [**अहो**] आश्चर्य है कि [**अनल्प-गरिमाणम् अपि**] अत्यधिक (अतुल्य) गरिमा (गुरुत्व अथवा भार) से युक्त होने पर भी (ऐसे) [**त्वाम्**] आपको [**प्रपन्नाः**] प्राप्त कर [**हृदये दधानाः**] (अपने) हृदय में धारण करने वाले [**जन्तवः**] प्राणी [**जन्मोदधिम्**] संसार-समुद्र को [**लघु**] हल्के (होते हुए) [**अतिलाघवेन**] बहुत ही शीघ्रता से [**कथम्**] कैसे [**तरन्ति**] तर जाते हैं? [**यदि वा हन्त**] अथवा आश्चर्य यह है कि [**महताम्**] महापुरुषों का [**प्रभावः**] प्रभाव [**चिन्त्यः**] चिन्तवन के योग्य [**न (भवति)**] नहीं होता है।

O Lord! You are endowed with unparalleled weight, i.e., your attributes are enormously dense; it is surprising that still how the living-beings who acquire you and establish you in their hearts become light and cross the ocean of worldly-existence in no time? Or, the amazing aspect is that the influence of great personages is beyond imagination.

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥१३॥

अन्वयार्थ – [**विभो!**] हे स्वामी! [**यदि**] यदि [**त्वया**] आपके द्वारा [**क्रोधः**] क्रोध [**प्रथमम्**] पहले ही [**निरस्तः**] नष्ट कर दिया गया था, [**तदा**] तो फिर [**वद**] कहिये कि आपने [**कर्मचौराः**] कर्म रूपी चोरों को [**कथम्**] किस प्रकार से [**ध्वस्ताः किल**] ध्वस्त (नष्ट) किया। [**यदि वा**] अथवा ठीक है कि [**अमुत्र लोके**] इस लोक में [**किम्**] क्या [**शिशिर हिमानी अपि**] शीत ऋतु में पड़ने वाला तुषार भी [**नीलद्रुमाणि**] हरे-भरे वृक्ष जिनमें हों ऐसे [**विपिनानि**] वनों को [**न प्लोषति**] नहीं जला देता है? अर्थात् नष्ट कर ही देता है।

O Lord! You had, at an earlier stage, annihilated anger *(krodha)*; this be the case, tell us how have you then vanquished the thieves in form of the karmas. Or (to explain this), in this world, does the cold frost of the winter not burn down the forests, full of thriving trees?

Explanatory Note

The Lord had earlier got rid of anger *(krodha)*, even gleaming *(saṃjvalana)* anger. How, without even an iota of anger, did the Lord vanquish the enemies in form of the karmas? *Ācārya* Kumudacandra clarifies that the opposite of anger, i.e., forbearance *(kṣamā)*, is the weapon the Lord had employed.

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोशदेशे ।
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥

अन्वयार्थ - [**जिन!**] हे जिनेन्द्र! [**योगिनः**] परम-मुनीश्वर [**सदा**] सदा [**परमात्मरूपम् त्वाम्**] परमात्मा-स्वरूप आपको [**हृदयाम्बुजकोशदेशे**] (अपने) हृदय रूपी कमल के मध्य-भाग में [**अन्वेषयन्ति**] खोजा करते हैं। [**यदि वा**] अथवा ठीक है कि [**पूतस्य**] पवित्र और [**निर्मलरुचेः**] निर्मल कान्ति वाले [**अक्षस्य सम्भवपदं**] कमल के बीज का (अथवा शुद्धात्मा का) खोज करने का स्थान (उत्पत्ति-स्थान) [**कर्णिकायाः अन्यत्**] कमल की कर्णिका (कमल का फल) को छोड़कर (अथवा हृदय-कमल की कर्णिका को छोड़कर) [**किम् ननु**] (दूसरा) क्या हो सकता है? (निश्चय नय से परमात्मा का निवास-स्थान स्वयं की शुद्धात्मा ही है।)

O Lord Jinendra! The supreme-ascetics *(yogī)* search incessantly for you – of the nature of the supreme-soul *(paramātmā)* – in the centre of their own heart-lotuses. It is but natural. What can be the place of origination and, therefore, of search, for the pious and pristine lotus-seed (or the supreme-soul) other than the pericarp of the lotus (or the centre of the heart-lotus)? [From the real point-of-view *(niścaya naya)*, the supreme-soul *(paramātmā)* resides in the own pure-soul.]

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥

अन्वयार्थ – [**जिनेश!**] हे जिनेन्द्र! [**भवतः**] आपके [**ध्यानात्**] ध्यान से [**भविनः**] संसार के प्राणी [**देहम्**] शरीर को [**विहाय**] छोड़ कर [**क्षणेन**] क्षण–मात्र में [**परमात्म दशाम्**] परमात्मा की अवस्था को [**व्रजन्ति**] प्राप्त हो जाते हैं। (वह इस प्रकार से है–) [**इव**] जिस प्रकार [**लोके**] लोक में [**तीव्रानलात्**] तीव्र अग्नि के संयोग से [**धातुभेदाः**] विविध धातुएँ [**उपलभावम्**] पत्थर–रूप भाव (पर्याय) को [**अपास्य**] छोड़ कर [**अचिरात्**] शीघ्र ही [**चामीकरत्वम्**] सुवर्ण–रूप (पर्याय) को प्राप्त हो जाती हैं।

O Lord Jinendra! Through your meditation *(dhyāna)*, the worldly-beings, in no time, leave behind their bodily existence and attain the status of the supreme-soul *(paramātmā)*. It is like this: In this world, on being heated in the fire, the various kinds of ores soon leave behind their nature of stone and turn into the nature of gold.

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६॥

अन्वयार्थ – [**जिन!**] हे जिनेन्द्र! [**भव्यैः**] भव्य जीवों के द्वारा [**यस्य**] जिस (शरीर के) [**अन्तः**] मध्य में (भीतर) [**त्वं**] आप [**सदैव**] हमेशा ही [**विभाव्यसे**] ध्याये जाते हो, [**तत् शरीरम् अपि**] उस शरीर को भी आप [**कथम् नाशयसे**] क्यों नष्ट करा देते हो? [**अथ**] अथवा [**एतत्स्वरूपम् हि**] यह स्वभाव ही है कि [**यत् मध्यविवर्तिनः**] उसके (शरीर के) मध्य में रहने वाले (दूसरा अर्थ– माध्यस्थ–भाव अर्थात् राग–द्वेष से रहित समताभावी) [**महानुभावाः**] महापुरुष [**विग्रहम्**] शरीर को (दूसरा अर्थ– द्वेष अथवा शत्रुता को) [**प्रशमयन्ति**] शान्त करते हैं।

O Lord Jinendra! (It is amazing that–) The worthy *(bhavya)* beings establish you in the centre of their bodies and meditate on you incessantly; why do you devoid them even of their bodies? (This has two-fold explanation.) 1. It is the nature of the great personages that although stationed in their respective bodies, they put their bodies to quiescence. 2. The great personages have equanimity – the state of being rid of attachment and aversion – as their nature and put all enmity (and fondness) to quiescence.

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं
किन्नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥

अन्वयार्थ – **[जिनेन्द्र!]** हे जिनेन्द्रदेव! **[इह]** इस लोक में **[मनीषिभिः]** बुद्धिमानों के द्वारा **[त्वत् अभेद बुद्ध्या]** 'आपसे अभिन्न है' ऐसी बुद्धि के द्वारा **[ध्यातः]** ध्यान किया गया **[अयं आत्मा]** यह आत्मा **[भवत्प्रभावः]** आप ही के समान प्रभाव वाला **[भवति]** हो जाता है। **[अमृतम् इति अनुचिन्त्यम्]** 'यह अमृत है' इस प्रकार (निरन्तर) चिन्तवन (मन्त्रित) किया जाने वाला **[पानीयम् अपि]** पानी भी **[किम्]** क्या **[विषविकारम्]** विष के विकार को **[नो अपाकरोति नाम]** दूर नहीं करता है? अर्थात् विष के विकार को दूर करने की सामर्थ्य पा ही लेता है।

O Lord Jinendra! In this world, when the wise persons meditate on you with the thought 'I am no different from you', their souls attain the same attribute (of being a pure-soul) as yours. Does the water that has been consecrated (with the mantra) amounting to 'This is nectar', not attain the attribute of being an antidote for poison? It certainly does attain this attribute.

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ।
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शङ्खो
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥१८॥

अन्वयार्थ – **[विभो!]** हे विभो! **[परवादिनः अपि]** अन्यमतावलम्बी पुरुष भी **[वीत तमसम्]** अज्ञान अन्धकार से रहित **[त्वाम् एव]** आपको ही **[नूनम्]** निश्चय से **[हरिहरादि धिया]** हरि, हर (विष्णु, शिव) आदि देवों की बुद्धि (कल्पना) से **[प्रपन्नाः]** प्राप्त होते हैं अर्थात् पूजते हैं। **[ईश]** हे स्वामी! **[किम्]** क्या **[काच कामलिभिः]** नेत्र-रोग (जिसमें रंग-भेद करने की क्षमता विकृत हो जाती है) से ग्रसित पुरुष के द्वारा **[शङ्खः सितः अपि]** शंख श्वेत होने पर भी **[विविध वर्ण विपर्ययेण]** तरह-तरह के विपरीत वर्णों (रंगों) से **[नो गृह्यते]** ग्रहण नहीं किया जाता है? अर्थात् किया जाता है।

O Lord! Even those men who according to their whim worship other devas, including Hari and Hara (Viṣṇu and Śiva), in fact, worship only you who is rid of the darkness of ignorance. O Lord! Does the man afflicted with the eye-disease (that hinders the ability to discriminate between various colours) not attribute different colours to the white conch?

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा-
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१९॥

(यहाँ से आठ श्लोकों में, श्लोक संख्या २६ तक, जिनेन्द्र भगवान् के आठ प्रातिहार्यों का वर्णन है।)

अन्वयार्थ - **[धर्मोपदेशसमये]** धर्मोपदेश के समय में **[ते]** आप (परमेश्वर) के **[सविधानुभावात्]** सामीप्य के प्रभाव से **[जनः आस्ताम्]** मनुष्य तो दूर रहे, **[तरुः अपि]** वृक्ष भी **[अशोकः]** शोक-रहित (अशोक) हो जाता है। **[वा]** अथवा **[दिनपतौ अभ्युद्गते (सति)]** सूर्य के उदित होने पर **[किम्]** क्या **[समहीरुहः अपि जीवलोकः]** वृक्षों सहित समस्त प्राणीवर्ग भी **[विबोधम्]** विशेष बोध (ज्ञान) अथवा विकास एवं प्रफुल्लता को **[न उपयाति]** नहीं प्राप्त होता है? अर्थात् होता है। यह **'अशोक वृक्ष'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

(Now onwards, up to verse 26, is the description of the eight Divine Splendours *(prātihārya)* that embellish the presence of Lord Jina.)

Due to the proximity to the Supreme Lord – at the time of his delivering the Divine Discourse – even the tree becomes 'Aśoka', meaning 'without-grief'; what is there to talk about the men! It is like this: At sunrise, does the entire animate-world, including the trees, not attain special awakening and felicity? This describes the Divine Splendour – the **Aśoka tree**.

The Aśoka Tree

अशोक वृक्ष

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानम्
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

अन्वयार्थ - [**उच्चैः अशोक तरु संश्रितम्**] उँचे **अशोक वृक्ष** के नीचे विराजित तथा [**उन्मयूखम्**] ऊर्ध्वमुखी (ऊपर की ओर जाती हुई किरण अथवा आभा) ऐसा [**भवतः**] आपका [**अमलम्**] उज्ज्वल [**रूपम्**] रूप है। [**स्पष्ट उल्लसत् किरणम्**] स्पष्ट रूप से शोभायमान हैं किरणें जिसकी तथा [**अस्त तमः वितानम्**] नष्ट कर दिया है अन्धकार का विस्तार जिसने ऐसे [**पयोधर**] मेघ की [**पार्श्ववर्ति**] समीपता को प्राप्त हुए [**रवेः बिम्बम् इव**] सूर्य के बिम्ब की तरह, (ऐसा आपका रूप) [**नितान्तम्**] अत्यन्त [**आभाति**] शोभित होता है।

Seated under the tall **Aśoka tree**, your effulgent form is having an upwards diffusing lustre. Your form looks extremely beautiful; it is like the sun which, although in proximity to the clouds, destroys the expanse of darkness with its clear rays that shine magnificently.

चित्रं विभो! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीष!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

अन्वयार्थ – [**विभो!**] हे स्वामी! [**चित्रम्**] आश्चर्य है कि [**विष्वक्**] सब ओर, [**अविरला**] व्यवधान-रहित [**सुरपुष्पवृष्टिः**] देवों के द्वारा की हुई पुष्पवृष्टि [**अवाङ्मुखवृन्तम्**] नीचे को बन्धन करके (फूलों के डण्ठल नीचे और पाँखुरी ऊपर की ओर) ही [**कथम्**] क्यों [**पतति**] पड़ती है! [**यदि वा**] अथवा ठीक है कि [**मुनीष!**] हे मुनियों के नाथ! [**त्वद्गोचरे**] आपके समीप [**सुमनसाम्**] पुष्पों के अथवा उत्तम चित्त वाले विद्वानों के [**बन्धनानि**] (पुष्पों के) डण्ठल तथा (विद्वानों के) कर्मों के बन्धन [**नूनम् हि**] निश्चय से [**अधः एव गच्छन्ति**] नीचे की ओर ही जाते हैं। (तात्पर्य यह है कि आपके सामीप्य से कर्मों के बन्धन नष्ट हो जाते हैं।) यह **'पुष्पवृष्टि'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

O Lord! The all-around shower of flowers fashioned by the devas is without any impediment. It is amazing that the flowers fall with their bonds, i.e., their stems, facing downwards! It is but appropriate. O Lord! In your proximity, the stems of the flowers or, in other words, the karmic bonds of the men whose hearts are pristine – the learned men – certainly get directed downwards (these get destroyed). This describes the Divine Splendour – the **shower of flowers**.

The Shower of Flowers

पुष्पवृष्टि

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात
सन्तानकादि कुसुमोत्कर वृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदविन्दु-शुभमन्द-मरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

अन्वयार्थ - हे प्रभो! [**गन्धोदविन्दु**] सुगन्धित जल की बूँदों और [**शुभमन्द मरुत् प्रपाता**] उत्तम मन्द हवा के साथ है गिरना जिसका, ऐसी [**उद्धा**] श्रेष्ठ और [**दिव्या**] मनोहर [**मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि**] मन्दार, सुन्दर, नमेरु, सुपारिजात, सन्तानक आदि [**कुसुमोत्कर वृष्टिः**] कल्पवृक्षों के **पुष्प-समूहों की वर्षा** [**ते**] आपके [**वचसाम्**] वचनों की [**ततिः वा**] पंक्ति की तरह [**दिवः**] आकाश से [**पतति**] गिरती है।

O Lord! Accompanied by the fragrant droplets of water afloat in pleasing and gentle breeze, the **shower of flowers** comprising excellent and attractive varieties including *mandāra*, *sundara*, *nameru*, *supārijāta* and *santānaka* that bloom on the wish-fulfilling-tree, called *kalpavṛkṣa*, falls from the sky; the shower appears as if a sequence of your divine words.

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसंमदसङ्गभाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥२१॥

अन्वयार्थ – हे स्वामी! (ज्ञानीजन) **[गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः]** गहरे (गम्भीर) हृदय रूपी समुद्र में उत्पन्न हुई **[तव]** आपकी **[गिरः]** वाणी को **[पीयूषताम्]** अमृत के रूप में **[स्थाने]** समुचित रीति से **[समुदीरयन्ति]** प्रकट करते हैं। **[यतः]** क्योंकि **[भव्याः]** भव्य प्राणी **[(ताम्) पीत्वा]** उसे पी कर **[परमसंमदसङ्गभाजा (सन्तः)]** परम (सर्वोत्कृष्ट) सुख का संग (संयोग) पाते हुए **[तरसा अपि]** बहुत ही शीघ्र **[अजरामरत्वम्]** अजर (बुढ़ापा) तथा अमर (मृत्यु-रहित) दशा को **[व्रजन्ति]** प्राप्त हो जाते हैं। (तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार गहरे समुद्र से निकले अमृत का पान करने से देव आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार आपकी वाणी को सुनने से भव्य प्राणी परम सुखी अथवा मुक्त हो जाते हैं।) यह **'दिव्यध्वनि'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

O Lord! Originating from the heart, deep like the ocean, your divine-voice is rightly described (by the learned men) as the nectar. It is so because after drinking it, the worthy *(bhavya)* souls get the supreme bliss and very soon attain the state that is free from old-age and death. [The idea is that as the devas get happiness after drinking the nectar obtained from the deep sea, the worthy souls too attain supreme bliss (of liberation) after listening to your divine-voice.] This describes the Divine Splendour – the **divine-voice**.

The Divine-voice of Lord Jina

भगवान् की दिव्यध्वनि

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व
भाषा-स्वभावपरिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

अन्वयार्थ - हे प्रभो! **[ते]** आपकी **[दिव्यध्वनिः]** दिव्यध्वनि **[स्वर्ग अपवर्ग]** स्वर्ग और मोक्ष को **[गम-मार्ग]** जाने वाले मार्ग के **[विमार्गण इष्टः]** खोजने के लिए इष्ट, **[त्रिलोक्याः]** तीनों लोकों के जीवों के लिए **[सद्धर्मतत्त्व कथनैक पटुः]** समीचीन धर्मतत्त्व के कथन करने में अत्यन्त समर्थ, और **[विशदार्थ सर्व-भाषा स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः]** स्पष्ट अर्थ वाली सम्पूर्ण भाषाओं में परिवर्तित होने वाले स्वाभाविक गुण से सहित **[भवति]** होती है।

O Lord! Your **divine-voice** (*divyadhvani)* is beneficial to those exploring the path leading to the heaven and liberation. It is wholly able to expound, for the living-beings of the three worlds, the true nature of the dharma. Its natural characteristic is that it can, by itself, get transformed into all languages, with clear meaning.

स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥

अन्वयार्थ – **[स्वामिन्!]** हे स्वामी! **[मन्ये]** मैं मानता हूँ कि **[सुदूरम्]** नीचे को बहुत दूर तक **[अवनम्य]** नम्रीभूत होकर **[समुत्पतन्तः]** (पश्चात्) ऊपर को जाते हुए **[शुचयः]** पवित्र (उज्ज्वल) **[सुरचामरौघाः]** देवों के द्वारा ढुराये गए चामर–समूह **[वदन्ति]** (लोगों से) कह रहे हैं कि **[ये]** जो **[अस्मै मुनिपुङ्गवाय]** इन श्रेष्ठ मुनि (जिनेन्द्र-देव) को **[नतिम्]** नमस्कार **[विदधते]** करते हैं, **[ते]** वे **[नूनम्]** निश्चय से **[शुद्धभावाः]** विशुद्ध परिणामों को प्राप्त कर **[ऊर्ध्वगतयः]** ऊर्ध्व गति वाले **[(भवन्ति) खलु]** अवश्य ही हो जाते हैं, अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यह **'चामर (चँवर)'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

O Lord! I believe that the waving by the devas of the auspicious and bright assemblage of hand-fans – that first bend very low and then move upwards – proclaims to the people that those who bow down in front of the Most Excellent Ascetic, i,e, the Jinendra Deva, certainly acquire purity in their thoughts, resulting in their attainment of the higher states of existence [first as the celestial-beings and, ultimately, the state of liberation *(mokṣa)*]. This describes the Divine Splendour – the **hand-fans**.

The Hand-fans

चामर (चँवर)

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

कुन्दावदात-चल चामर-चारु शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झर-वारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

अन्वयार्थ – हे प्रभो! [**कुन्द अवदात**] कुन्द पुष्प के समान निर्मल-श्वेत [**चल चामर-चारु शोभम्**] हिलते हुए सुन्दर **चामरों** की शोभा से युक्त, [**कलधौत-कान्तम्**] स्वर्ण की कान्ति को लिए हुए [**तव**] आपका [**वपुः**] शरीर [**विभ्राजते**] शोभायमान होता है। (यह कैसा प्रतीत होता है?) [**सुरगिरेः**] सुमेरु पर्वत के [**शातकौम्भम्**] स्वर्णमयी [**उच्चैः तटम् इव**] ऊँचे तट के समान, जिस पर [**उद्यत् शशाङ्क**] उदीयमान चन्द्रमा के सदृश [**शुचि निर्झर वारिधारम्**] शुक्ल झरनों की जलधारा बह रही हो।

O Lord! Your body, with the lustre of gold, looks enchanting as it is accompanied by the beauty of the waving **hand-fans**, white as the flower 'kunda' (a kind of jasmine). (How does this appear?) It appears like the high, golden slope of the Sumeru mountain on which are flowing the streams of pristine water, white as the rising moon.

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै-
श्चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥२३॥

अन्वयार्थ - हे स्वामी! [**इह**] इस लोक में [**गभीरगिरम्**] गम्भीर दिव्यध्वनि-युक्त और [**उज्ज्वल-हेमरत्न-सिंहासनस्थम्**] उज्ज्वल सुवर्ण से निर्मित रत्नजड़ित सिंहासन पर स्थित, [**श्यामम्**] श्याम वर्ण वाले [**त्वाम्**] आपको [**भव्यशिखण्डिनः**] भव्य जीव रूपी मयूर [**चामीकराद्रिशिरसि**] सुवर्णमय मेरु-पर्वत के शिखर पर [**उच्चैः नदन्तम्**] जोर से गर्जते हुए [**नवाम्बुवाहम् इव**] नूतन मेघ की तरह [**रभसेन**] उत्कण्ठा-पूर्वक [**आलोकयन्ति**] देखते हैं। (अर्थात्, आपके दर्शन पाकर भव्य जीवों को अत्यन्त आनन्द होता है तथा उनका मन मेघ देखने पर मयूर की तरह आनन्दित होकर नाचने लगता है।) यह **'सिंहासन'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

O Lord! In this world, stationed above the bejeweled-throne made of bright gold, you are endowed with the deep, divine-voice. The peacocks – nay, the worthy *(bhavya)* living-beings – look at you with great excitement; as if having the sight of the newly formed, thundering clouds on top of the golden Sumeru mountain! (In other words, your sight accords immense happiness to the hearts of the worthy beings; it is like the joy of the peacock that starts dancing on seeing the newly formed clouds.) This describes the Divine Splendour – the **(bejeweled) throne**.

The (Bejeweled) Throne

सिंहासन

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

सिंहासने मणिमयूख-शिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्त्ररश्मेः ॥२९॥

अन्वयार्थ – हे प्रभो! [**मणिमयूख**] रत्नों की किरणों के [**शिखाविचित्रे**] अग्रभाग से चित्र-विचित्र [**सिंहासने**] (**रत्नमयी**) **सिंहासन** पर [**तव**] आपका [**कनक अवदातम्**] स्वर्ण की तरह उज्ज्वल [**वपुः**] शरीर [**विभ्राजते**] शोभायमान हो रहा है। (यह कैसा प्रतीत होता है?) [**तुङ्ग उदयाद्रि शिरसि**] ऊँचे उदयाचल (पर्वत) के शिखर पर जिसका [**अंशुलता वितानम्**] किरण-रूपी लताओं का समूह [**वियत् विलसत्**] आकाश में शोभायमान है, ऐसे [**सहस्त्ररश्मेः बिम्बम् इव**] सूर्य के मण्डल की तरह।

O Lord! Your body, gleaming like gold, is looking enchanting above the **(bejeweled) throne** which is studded with jewels that make its facade shine with multi-hued rays. (How does this appear?) It appears like the sun-disk that shines brightly in the sky with its multitude of rays, on the summit of the towering Udayācala (mountain).

उद्‌गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव ।
सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

अन्वयार्थ - **[उद्‌गच्छता]** स्फुरायमान (उदीयमान) **[तव]** आपके **[शितिद्युति मण्डलेन]** श्वेत (अथवा उज्ज्वल) कान्ति वाले प्रभामण्डल के द्वारा **[अशोकतरुः]** अशोक वृक्ष **[लुप्तच्छदच्छविः]** कान्तिहीन पत्रों वाला **[बभूव]** हो गया। **[यदि वा]** अथवा ऐसा है कि- **[वीतराग!]** हे वीतराग (राग-द्वेष रहित) स्वामी! **[तव सान्निध्यतः अपि]** आपकी समीपता मात्र से ही **[कः सचेतनः अपि]** कौन पुरुष सचेतन (बुद्धिवंत) होकर भी **[नीरागताम्]** लालिमा-ललाई से रहितपने अथवा अनुराग के अभाव को **[न व्रजति]** नहीं प्राप्त होता? अर्थात् अवश्य होता है। (यहाँ पर राग पद दो अर्थ वाला है- लालिमा-ललाई और अनुराग-स्नेह।) यह **'भामण्डल'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

The leaves of the Aśoka tree became lustreless due to your halo that is effulgent and radiating brilliantly. In other words, O Attachment-free *(vītarāga)* Lord! just by your proximity which thoughtful *(sacetana)* man not gets rid of his red-colouration *(lālimā)*, nay, attachment *(rāga)*? [The word *'raga'* in the verse carries two meanings: 1) red-colouration *(lālimā),* and 2) attachment *(rāga)*.] This describes the Divine Splendour – the **halo**.

The Halo of Lord Jina

भगवान् का भामण्डल

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

शुम्भत्प्रभावलय-भूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥३४॥

अन्वयार्थ - [**विभोः**] हे प्रभो! [**ते**] आपके [**शुम्भत्**] शोभायमान [**प्रभावलय**] **भामण्डल** की [**भूरि**] विशाल [**विभा**] कान्ति [**लोकत्रये द्युतिमताम्**] तीनों लोकों के कान्तिमान पदार्थों की [**द्युतिम्**] कान्ति को [**आक्षिपन्ती**] तिरस्कृत करने वाली है। वह [**निरन्तर-भूरि-संख्या**] निरन्तर व संख्या में अनेक [**प्रोद्यद्दिवाकर**] उगते हुए सूर्यों की तथा [**निशाम् अपि**] रात्रि में भी [**सोमसौम्याम्**] चन्द्रमा की सुन्दर (शीतल) [**दीप्त्या अपि**] दीप्ति को भी [**जयति**] जीत रही है।

O Lord! The magnificence of your enchanting **halo** *(bhāmaṇḍala)* derides the brightness of all effulgent objects in the three worlds. While it subdues the intensity of the constantly shining large number of rising suns, it also gets the better of the soothing luminance of the moon, seen at night.

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव! जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥२५॥

अन्वयार्थ - [**देव!**] हे देव! [**मन्ये**] मैं यह मानता हूँ कि [**अभिनभः**] आकाश में सब ओर [**नदन्**] शब्द करती हुई [**ते**] आपकी (आपके लिए) [**सुरदुन्दुभिः**] देवों के द्वारा बजाई गई दुन्दुभि [**जगत्त्रयाय**] तीनों लोकों के जीवों को [**एतत् निवेदयति**] यह सूचित कर रही है कि- [**भो भोः**] रे रे प्राणियों! [**प्रमादम् अवधूय**] प्रमाद अथवा आलस्य को छोड़कर [**निर्वृतिपुरीम् प्रति सार्थवाहम्**] मोक्षपुरी (मोक्ष-स्थान) में ले जाने के लिये अगुआ अथवा नेता [**एनम्**] इन (पार्श्वनाथ भगवान् को) [**आगत्य**] (इस समवसरण में) आकर [**भजध्वम्**] भजो अर्थात् नमस्कार करो। यह '**दुन्दुभिनाद**' प्रातिहार्य का वर्णन है।

O Lord! I reckon that the (dulcet) sound of the kettledrums, made by the devas, that fills up all directions in the sky proclaims to the living-beings in the three-worlds that– O living-beings! O living-beings! Leave your negligence and sloth; come to the majestic pavilion *(samavasaraṇa)* and make adoration to him (Lord Pārśvanātha) who is the leader to take you to the abode of liberation *(mokṣa)*. This describes the Divine Splendour – the **sound of kettledrums**.

The Sound of Kettledrums

दुन्दुभिनाद

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभसंगम-भूतिदक्षः ।
सद्धर्मराज-जयघोषण-घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

अन्वयार्थ – हे प्रभो! **[गम्भीर-तार]** गम्भीर और उच्च **[रव]** शब्द से **[पूरित दिग्विभागः]** दिशाओं के विभाग को पूर्ण करने वाला, **[त्रैलोक्य लोक शुभसंगम]** तीन लोक के जीवों को शुभ समागम की **[भूतिदक्षः]** सम्पत्ति प्राप्त कराने में समर्थ, **[सद्धर्मराज]** समीचीन धर्म के स्वामी अर्थात् तीर्थंकर की **[जयघोषण घोषकः]** जय-घोषणा करने वाला, **[दुन्दुभिः] दुन्दुभि** (बाजा) **[ते]** आपके **[यशसः]** यश का **[प्रवादी सन्]** कथन करता हुआ **[खे]** आकाश में **[ध्वनति]** नाद करता है।

O Lord! The (dulcet) **sound of kettledrums**, proclaiming your glory, fills up the sky. Its deep and magnificent sound cements all distinction between the directions; it enables the living-beings of the three worlds to take delight, as it were, in the wealth of the divine congregation; and it announces the victory of the Lord of True Religion, i.e., the *Tīrthaṅkara.*

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्र–
व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥२६॥

अन्वयार्थ – **[नाथ!]** हे स्वामिन्! **[भवता भुवनेषु उद्योतितेषु]** आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर **[विहताधिकारः]** अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा **[मुक्ताकलाप कलित]** मोतियों के समूह से सहित (थामा हुआ), **[उल्लसितात पत्र व्याजात्]** शोभायमान सफेद छत्र के छल (बहाने) से, **[तारान्वितः]** ताराओं से वेष्टित **[अयं विधुः]** यह चन्द्रमा **[त्रिधा धृततनुः]** तीन-तीन शरीर धारण कर **[ध्रुवम्]** निश्चय से **[(त्वाम्) अभ्युपेतः]** आपकी सेवा में प्राप्त हुआ है। (तात्पर्य यह है कि आपकी केवलज्ञान रूपी कान्ति से मानो चन्द्रमा का प्रकाश करने का अधिकार छीन लिया गया। इस पर चन्द्रमा छल से तीन छत्र का रूप धारण कर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ है।) यह **'छत्रत्रय'** प्रातिहार्य का वर्णन है।

O Lord! Since (with the brilliance of your infinite-knowledge) you had already illumined the three-worlds, the moon in midst of the constellations of stars, certainly felt deprived of its power and, through deception, took to adopting three bodies in form of the shining and crystal-white three-tier canopy supported by the frills made of a collection of pearls to be able to present itself in your service. This describes the Divine Splendour – the **three-tier canopy**.

The Three-tier Canopy

छत्रत्रय

Ācārya Mānatuṅga's ***Bhaktāmara Stotra:***

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकरजाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

अन्वयार्थ – हे प्रभो! [**शशाङ्ककान्तम्**] चन्द्रमा की कान्ति को लिए हुए, [**भानुकर-प्रतापम्**] सूर्य की किरणों के प्रताप को [**स्थगित**] रोकने वाले तथा [**मुक्ताफल**] मोतियों के [**प्रकरजाल**] समूह (झालर) से [**विवृद्ध शोभम्**] बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले [**तव उच्चैः स्थितम्**] आपके ऊपर स्थित [**छत्रत्रयम्**] **छत्रत्रय (तीन छत्र)** [**त्रिजगतः**] (आपके) तीन जगत् के [**परमेश्वरत्वम्**] परमेश्वरत्व (स्वामित्व) को [**प्रख्यापयत्**] प्रकट करते हुए [**विभाति**] शोभायमान हो रहे हैं।

O Lord! The **three-tier canopy**, stationed above you, carries the lustre of the moon; it obliterates the intense rays of the sun; and the frills, made of pearls, add to its beauty. While signalling your lordship over the three worlds, it looks enchanting.

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन
कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन ।
माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥२७॥

अन्वयार्थ – **[भगवन्]** हे भगवन्! आप (समवसरण भूमि में) **[अभितः]** चारों ओर **[माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन]** माणिक्य, सुवर्ण तथा रजत (चाँदी) से निर्मित **[साल त्रयेण]** तीनों कोटों से **[विभासि]** शोभायमान होते हो। **[स्वेन कान्ति प्रताप यशसाम् सञ्चयेन इव]** अपनी (जो कि वास्तव में आपके प्रभाव से ही है) कान्ति, प्रताप और यश के समूह से शोभायमान वे मानो **[प्रपूरित जगत्त्रय पिण्डितेन]** भरे हुए तीनों लोकों के पिण्ड–रूप हो गए हैं।

O Lord! [In the majestic pavilion *(samavasaraṇa)*–] Your presence is embellished with the three enclosures made of ruby, gold and silver, in all the four directions. These (three enclosures), with abundance of their brilliance, splendour and glory, appear like the assemblages of the three-worlds.

दिव्यस्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८॥

अन्वयार्थ - **[जिन!]** हे जिनेन्द्र! **[दिव्य स्रजाः]** दिव्य पुष्पों की मालाएँ **[नमत्त्रिदशाधिपानाम्]** नमस्कार करते हुए इन्द्रों के **[रत्नरचितान् मौलिबन्धान् अपि]** रत्नों से रचित मुकुटों के बन्धन को भी **[उत्सृज्य]** छोड़ कर **[भवतः पादौ श्रयन्ति]** आपके चरणों का आश्रय लेती हैं। **[यदि वा]** अथवा ठीक है कि **[त्वत्सङ्गमे (सति)]** आपका समागम होने पर **[सुमनसः]** पुष्प अथवा विद्वान् पुरुष **[परत्र]** अन्यत्र (किसी दूसरी जगह) **[न एव रमन्त]** नहीं रमण करते हैं। (श्लोक में आए 'सुमनस्' शब्द के दो अर्थ हैं- पहला पुष्प, तथा दूसरा विद्वान् पुरुष।)

O Lord Jinendra! The garlands of the divine flowers leave the bonds of the jewel-studded diadems of the Indras as they bow down in front of you, and take refuge in your Feet. This is but natural. On attaining your companionship, the (divine) flowers – or else, the learned men – do not move to other places. (The word *'sumanas'* that appears in this verse has two meanings – one, the (divine) flowers and, two, the learned men.)

त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिवनृपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥

अन्वयार्थ – [**नाथ!**] हे स्वामिन्! [**त्वम्**] आप [**जन्मजलधेः**] संसार-समुद्र से [**विपराङ्मुखः अपि (सन्)**] पराङ्मुख होते हुए भी [**यत्**] जो [**निजपृष्ठलग्नान्**] अपने पीछे लगे हुए अनुयायी [**असुमतः**] जीवों को [**तारयसि**] तार देते हो; वह [**पार्थिवनृपस्य सतः एव**] राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके घड़े की तरह परिणमन करने वाले [**तव**] आपको [**युक्तम् हि**] उचित ही है। परन्तु [**विभो!**] हे प्रभो! [**(तत्) चित्रम्**] वह आश्चर्य की बात है [**यत्**] जो आप [**कर्मविपाकशून्यः असि**] कर्मों के उदय रूप विपाक क्रिया से शून्य (रहित) हो। (कच्चा घड़ा तो पानी में गल कर घुल जाता है किन्तु आप पाक-रहित होते हुए भी जीवों को संसार-समुद्र से पार लगा देते हो। श्लोक में आए 'विपाक' शब्द के दो अर्थ हैं- पहला अग्नि से कोमल मिट्टी को पका कर कठोर बनाना, तथा दूसरा कर्मों का उदय में आना।)

O Lord! Although you have turned away from the ocean of worldly-existence, you enable the living-beings who follow you cross over this ocean. This is appropriate as you act like the king-of-kings or like the earthen pot that has been toughened by heating in a kiln. O Lord! This is surprising as you are rid of the rise of the karmas on ripening. (The word *'vipāka'* that appears in the verse has two meanings – one, the heating of clay in a kiln and, two, the rise of the karmas on ripening.)

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वं
किंवाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्मीश!
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतुः ॥३०॥

अन्वयार्थ – [**जनपालक!**] हे जीवों के रक्षक! [**त्वम्**] आप [**विश्वेश्वरः अपि दुर्गतः**] तीन लोक के नाथ होकर भी दुर्गत अर्थात् दरिद्र हो, [**किं वा**] इसके अतिरिक्त [**अक्षरप्रकृतिः अपि त्वम् अलिपिः**] अक्षर-प्रकृति होकर भी आप लेखन-क्रिया से रहित हैं। [**ईश!**] हे स्वामिन्! [**कथञ्चित्**] किसी प्रकार से [**अज्ञानवति अपि त्वयि**] अज्ञानवान् (मति, श्रुत आदि ज्ञान की अपेक्षा से) होने पर भी आप में [**विश्वविकासहेतुः ज्ञानं सदैव स्फुरति**] विश्व के सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान सदैव स्फुरायमान रहता है।

नोट– इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार प्रयुक्त हुआ है। शब्दों के सुनते समय जो विरोध मालूम होता है, उसका निराकरण अर्थ के विचारने पर हो जाता है। भगवान् को तीन लोक के नाथ होकर भी 'दुर्गत' अर्थात् दरिद्र कहा गया है; परन्तु यदि दुर्गत का अर्थ 'कठिनाई से जाने सकते हैं' लिया जाए तो विरोध का परिहार हो जाता है। आगे भगवान् को 'अक्षर-प्रकृति' (वर्ण-स्वरूप) मान कर भी 'अलिपि' अर्थात् लेखन-क्रिया से रहित कहा है; परन्तु यदि 'अक्षर-प्रकृति' का अर्थ 'नष्ट नहीं होने वाला' तथा 'अलिपि' का अर्थ 'निराकार' लिया जाए तो विरोध का परिहार हो जाता है। इसके आगे भगवान् को अज्ञानवान् (मति, श्रुत आदि ज्ञान की अपेक्षा से) होने पर भी विश्व के सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञानी कहा गया है; यहाँ यदि 'अज्ञानवति अपि त्वयि' को 'अज्ञान् अवति अपि त्वयि' के अर्थ में लिया जाए तो यह अर्थ हो जाता है– अज्ञानी मनुष्यों की रक्षा करने वाले आप में हमेशा केवलज्ञान जगमगाता रहता है।

O Protector of the Living-beings! You are the Lord of the three-worlds but still you are poor *(durgata)*. Moreover, you are of the nature of the alphabet – *akṣaraprakṛti* – but still you are inexpressible by words – *alipi*. O Lord! In a way, you are rid of knowledge [from the point-of-view of knowledge including the sensory *(mati)* and scriptural *(śruta)*] but still you possess knowledge that constantly illumines all objects in the universe.

Note: This verse uses the figure-of-speech *(alaṅkāra)* called *'virodhābhāsa'* or oxymoron – conjoining contradictory terms. How can the Lord of the three-worlds be poor? The contradiction is resolved when the word *'durgata'* is translated as 'difficult to be known'. How can you be of the nature of the alphabet – *akṣaraprakṛti* – but inexpressible by words – *alipi*? The contradiction is resolved when *'akṣaraprakṛti'* is translated as 'indestructible', and *'alipi'* as 'formless'. How can you be rid of the knowledge but the illuminator of all objects in the universe? The contradiction is resolved when the phrase *'ajñānavati api tvayi'* is read as *'ajñān avati api tvayi'*. The meaning then changes to: In you, the protector of the men without knowledge, illumines incessantly the perfect-knowledge *(kevalajñāna)*.

प्राग्भारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषा-
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

अन्वयार्थ - [**नाथ!**] हे स्वामिन्! [**शठेन कमठेन**] दुष्ट कमठ के (जीव) द्वारा [**रोषात्**] क्रोध से [**प्राग्भारसम्भृतनभांसि**] सम्पूर्ण रूप से आकाश को व्याप्त करने वाली [**यानि**] जो [**रजांसि**] धूलि [**उत्थापितानि**] आपके ऊपर उड़ाई गई थी [**तैः तु**] उससे तो [**तव**] आपकी [**छाया अपि**] छाया भी [**न हता**] नहीं नष्ट हुई थी। [**परम्**] किन्तु [**अयमेव दुरात्मा**] वही दुष्ट (कमठ) [**हताशः**] हताश हो [**अमीभिः**] उसी धूलि से (अथवा कर्म-रूप रज से) [**ग्रस्तः**] ग्रस्त हुआ था अथवा जकड़ा गया था।

नोट- जब भगवान् पार्श्वनाथ तपस्या कर रहे थे, तब उनके पूर्व-भव के वैरी कमठ के जीव - अब शम्बर नाम का असुर - ने उनके ऊपर उपसर्ग करते हुए भयंकर धूलि उड़ाई गई थी। उस धूलि से भगवान् का तो कुछ नहीं बिगड़ा परन्तु कमठ के जीव ने अपने लिए कर्मों का बन्ध अवश्य कर लिया था।

O Lord! The wicked (incarnation of) Kamaṭha, out of anger, had caused the formation of a dense cloud of dust, engulfing the entire sky, on you. It had not been able to disfigure even your shadow. However, that very cloud of dust had caused despondency to (the incarnation of) Kamaṭha; in other words, he only got bound with the karmas.

Note: The (incarnation of) Kamaṭha had been carrying enmity with (the incarnation of) Lord Pārśvanātha for

last many incarnations. When the Lord, in his final birth, was engaged in the dharma-meditation, the (incarnation of) Kamaṭha – a subordinate-deva *(asura)* of stellar *(jyotiṣa)* class, named Śambara – had caused the formation of a dense cloud of dust over him. The (incarnation of) Kamaṭha failed miserably in distracting the Lord from his meditation; instead, (the incarnation of) Kamaṭha himself got bound with intractable, evil karmas.

यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीम-
भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे
तेनैव तस्य जिन! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥

अन्वयार्थ – [**जिन!**] हे जिनेश्वर! [**अथ**] और, [**दैत्येन**] उस कमठ ने [**गर्जदूर्जितघनौघम्**] अत्यधिक गर्जना करने वाले घने मेघ समूह हों जिसमें, ऐसी; [**भ्रश्यत्तडित्**] गिर रही है तड़तड़ाती बिजली जिसमें, ऐसी; [**मुसलमांसलघोरधारम्**] मूसल के समान स्थूल तथा भारी धारा से युक्त, ऐसी; और [**अदभ्रभीम**] अत्यन्त भयंकर, ऐसी; [**यत्**] जो [**दुस्तर वारि**] कठिनाई से तरने योग्य जल की (वर्षा की) [**मुक्तम् दध्रे**] उत्पत्ति की थी, [**तेन**] उस (जलवृष्टि) से [**तस्य एव**] उस (कमठ) ने अपने लिए ही [**दुः तरवारि कृत्यम्**] तीक्ष्ण तलवार का कार्य किया था, अर्थात् अपने आप का ही विघात किया था।

O Lord Jinendra! Further, the (incarnation of) same Kamaṭha had caused very intense rainstorm where thick clouds broke into fearsome flashes of lightning and thundering, accompanied by a torrent that resulted in the fall of pestle-like broad streams of water, inundating and deluging the area around. For (the incarnation of) Kamaṭha, this act (of causing the rainstorm) had proved to be self-destructing; it wounded him, as if by a sharp sword.

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड–
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रतिभवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याऽभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥

अन्वयार्थ – हे स्वामी! (उस असुर के द्वारा) [**ध्वस्तोर्ध्वकेश**] मुंडे हुए केश तथा [**विकृत आकृति**] विकृत आकृति वाले [**मर्त्यमुण्ड**] नर कपालों की [**प्रालम्बभृत्**] माला को धारण करने वाले, [**भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः**] जिनके भयानक मुख से अग्नि निकल रही है, ऐसे [**यः**] जो [**प्रेतव्रजः अपि**] भूतों का समूह भी [**भवन्तम् प्रति**] आपके प्रति [**ईरितः**] प्रेरित किया गया था अर्थात् उपस्थित किया गया था, [**सः**] वह [**अस्य**] उस (असुर) को [**प्रतिभवम्**] प्रत्येक भव में [**भवदुःखहेतुः**] संसार के दुःखों का कारण [**अभवत्**] हुआ था।

O Lord! The troupe of ghosts – with shaven heads, distorted figures, wearing the bands of human skulls, and emitting fire from their mouths – that was sent [by the subordinate-deva *(asura)* – Kamaṭha] to dislodge you had become for him only the cause of worldly suffering in each future incarnation.

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः
पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः ॥३४॥

अन्वयार्थ - **[भुवनाधिप!]** हे तीन लोक के नाथ! **[विभो!]** हे स्वामिन्! **[भुवि]** संसार में **[त एव]** वे ही **[धन्याः]** धन्य हैं। (वे कौन?) **[ये]** जो **[जन्मभाजः]** प्राणी **[विधुतान्यकृत्याः]** (जिन्होंने) अन्य काम छोड़ दिए हैं, और **[भक्त्या]** (जिनका) भक्ति से **[उल्लसत् पुलक पक्ष्मलदेहदेशाः]** प्रकट हुए रोमाञ्चों से शरीर का प्रत्येक प्रदेश (अवयव) व्याप्त है, और **[विधिवत्]** (जो) विधिपूर्वक **[त्रिसन्ध्यम्]** तीनों सन्ध्याओं (प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सायंकाल) में **[तव]** आपके **[पादद्वयम्]** चरणयुगल की **[आराधयन्ति]** आराधना करते हैं।

O Lord of the Three-worlds! O Supreme Lord! Only they are blessed in this world. (They; who?) Those living-beings who have set aside all other work; whose each space-point of the body is overwhelmed by the thrill engendered by your devotion; and those who worship the duo of your feet in the prescribed manner, during the three time-junctures *(saṃdhyā)* – morning, noon and evening.

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

अन्वयार्थ – [**मुनीश!**] हे मुनियों के स्वामी! [**मन्ये**] मैं ऐसा मानता हूँ कि (आप) [**अस्मिन् अपारभववारिनिधौ**] इस अपार संसार–भव–रूपी समुद्र में [**तु**] निश्चय से [**मे**] मेरे [**श्रवणगोचरतां न गतः असि**] कानों की विषयता को प्राप्त नहीं हुए हो। (क्योंकि) [**तव गोत्रपवित्रमन्त्रे**] आपके नाम–रूपी पवित्र मन्त्र के [**आकर्णिते (सति)**] सुने जाने पर [**विपद् विषधरी**] विपत्ति–रूपी नागिन [**किम् वा**] क्या [**सविधम्**] समीप [**समेति**] आ सकती? अर्थात् नहीं आती। (तात्पर्य यह है कि मैं संसार में अनेक दुःख इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि मैंने अभी तक आपके पवित्र नाम का श्रवण नहीं किया है।)

O Lord of the Ascetics! I reckon that (while swimming) in this unbounded ocean of worldly-existence, my ears have certainly not made you their subject. On hearing the auspicious mantra, comprising your name, was it possible for the she-serpent, in form of sufferings, to come near me? No. (The idea is that I am suffering miseries in this world as, till date, I have not been able to hear your pious name.)

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!
मन्ये मया महितमीहितदानदक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ।।३६।।

अन्वयार्थ - [**देव!**] हे देव! [**मन्ये**] मैं ऐसा मानता हूँ कि [**मया**] मैंने [**जन्मान्तरे अपि**] जन्मान्तर (पूर्व जन्म) में भी [**ईहितदानदक्षम्**] इच्छित दान देने में समर्थ [**तव पादयुगम्**] आपके चरण-युगल [**न महितम्**] नहीं पूजे। [**तेन**] उसी (कारण) से [**इह जन्मनि**] इस जन्म में, [**मुनीश!**] हे मुनियों के स्वामी! [**अहम्**] मैं [**मथिताशयानाम्**] हृदय-भेदी [**पराभवानाम्**] तिरस्कारों का [**निकेतनम्**] घर [**जातः**] हुआ हूँ। (तात्पर्य यह है कि मैंने जन्मान्तर (पूर्व जन्म) में भी आपके चरणों की पूजा नहीं की और इसीलिए संसार में अनेक तिरस्कारों का पात्र हुआ हूँ।)

O Lord! I reckon that in the previous birth(s) too I have not worshipped the duo of your Feet that are capable of bestowing the desired fruit. O Lord of the Ascetics! It is due to this reason that I have become home to heart-rending humiliations in this birth. (The idea is that as I have not adored you in the previous birth(s), I am suffering humiliations in this birth.)

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥३७॥

अन्वयार्थ – **[विभो!]** हे स्वामिन्! **[मोहतिमिर आवृत लोचनेन]** मोह रूपी अन्धकार से आच्छादित हैं नेत्र जिसके, ऐसे **[मया]** मेरे द्वारा आप **[पूर्वम्]** पूर्व में **[सकृद् अपि]** एक बार भी **[नूनम्]** निश्चय से **[प्रविलोकितः न असि]** अच्छी तरह अवलोकित नहीं हुए हो, अर्थात् मैंने आपके दर्शन भली प्रकार से नहीं किये। **[अन्यथा हि]** नहीं तो (अगर किये होते तो) **[प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः]** जिनमें कर्म-बन्ध की गति बढ़ रही है, ऐसे **[ऐते]** ये **[मर्माविधः]** मर्मभेदी **[अनर्थाः]** अनर्थ **[माम्]** मुझे **[कथम्]** क्यों **[विधुरयन्ति]** दुःखी करते? (तात्पर्य यह है कि पूर्व में मैं दर्शनमोहनीय के उदय से अन्धा होकर आपके दर्शन से वंचित ही रहा और इसीलिए आज मैं दुःखी हो रहा हूँ।)

O Supreme Lord! I, whose eyes, certainly, were covered with the darkness of delusion *(moha)* in the past could not, even once, see you in a befitting manner. Otherwise, how could the (evil) bonds of the karmas whose prowess is ever on the increase cause such heart-rending calamities and, thereby, misery to me? (The idea is that in the past, blinded by the rise of the faith-deluding *(darśana-mohanīya)* karmas I could not see you and, therefore, am miserable today.)

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं
यस्मात् क्रियाःप्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥३८॥

अन्वयार्थ - अथवा **[जनबान्धव!]** हे जगद्बन्धु! **[मया]** मेरे द्वारा आप **[आकर्णितः अपि]** आकर्णित भी हुए हो, अर्थात् मेरे कानों ने आपका नाम भी सुना है, **[महितः अपि]** पूजित भी हुए हो, और **[निरीक्षितः अपि]** अवलोकित भी हुए हो, फिर भी **[नूनम्]** निश्चित है कि **[भक्त्या]** भक्तिपूर्वक **[चेतसि]** चित्त में **[न विधृतः असि]** धारण नहीं किये गए हो। **[तेन]** उसी से **[दुःखपात्रम् जातः अस्मि]** (मैं) दुःखों का पात्र हो रहा हूँ, **[यस्मात्]** क्योंकि **[भावशून्याः]** भावों से रहित **[क्रियाः]** क्रियाएँ **[न प्रतिफलन्ति]** सफल नहीं होती हैं।

नोट- पूर्व के श्लोक 35 में आचार्य कुमुदचन्द्र ने कहा है कि मैंने आपके पवित्र नाम का श्रवण नहीं किया, श्लोक 36 में वे कहते हैं कि मैंने आपके चरणों की पूजा नहीं की, तथा श्लोक 37 में वे कहते हैं कि मैं आपके दर्शन से वंचित ही रहा। अब इस श्लोक में पक्षान्तर-रूप से वे कह रहे हैं कि मैंने आपके पवित्र नाम का श्रवण भी किया, आपके चरणों की पूजा भी की, तथा आपके दर्शन भी किये। फिर भी क्या कारण है कि मैं दुःखों का पात्र हो रहा हूँ? इसका कारण केवल यही है कि मैंने भक्तिपूर्वक ये सब कार्य नहीं किये।

Or, O Lord of the World! My ears have heard your name, I have worshipped you, and my eyes have seen you; but it is certain that I have not performed these activities with your devotion in my heart. And that is why I am subjected to miseries; it is clear that activities

performed without devotion do not yield fruit.

Note: Earlier, in verse 35, *Ācārya* Kumudacandra has confessed that his ears had not heard the pious name of Lord Pārśvanātha, in verse 36 he says that he had not worshipped the duo of Lord's Feet, and in verse 37 he says that he had not seen the Lord in a befitting manner. Now, as a rejoinder, he says that he has heard the Lord's pious name, worshipped His Feet, and seen Him. He wonders as to why he is still not getting rid of his miseries. He himself provides the answer asserting that activities performed without devotion do not yield the desired fruit.

त्वं नाथ! दुःखिजनवत्सल! हे शरण्य!
कारुण्यपुण्यवसते! वशिनां वरेण्य!
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय
दुःखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥३९॥

अन्वयार्थ - [**नाथ!**] हे नाथ! [**दुःखिजनवत्सल!**] हे दुःखियों पर स्नेह करने वाले! [**हे शरण्य!**] हे शरणागत प्रतिपालक! [**कारुण्यपुण्यवसते!**] हे दया (कारुण्य) की पवित्र-भूमि! [**वशिनाम् वरेण्य!**] हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! और [**महेश!**] हे महेश्वर! [**भक्त्या**] भक्तिपूर्वक [**नते मयि**] नम्रीभूत मुझ पर [**दयाम् विधाय**] दया करके [**दुःखांकुरोद्दलन तत्परताम्**] मेरे दुःखों के अंकुर के नाश करने में तत्परता (शीघ्रता) [**विधेहि**] कीजिये।

O Lord! O the bestower of affection on the miserable! O the benefactor of those who have taken refuge in you! O the sacred land of compassion! O the best among those who have controlled their senses! and, O the great God! With devotion, I bow down in front of you; now, have mercy on me and destroy speedily the sprouts of my miseries.

निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादितरिपुप्रथितावदातम् ।
त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवन्ध्यो
वन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन हा हतोऽस्मि ॥४०॥

अन्वयार्थ - **[भुवनपावन]** हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्! **[निःसंख्यसारशरणम् शरणम्]** हे असंख्यात श्रेष्ठ पदार्थों के गृह की रक्षा करने वाले! **[शरण्यम्!]** शरणागत प्रतिपालक और **[सादितरिपु प्रथितावदातम्]** कर्म-शत्रुओं के नाश करने से प्रसिद्ध है पराक्रम जिनका, ऐसे **[त्वत्पादपंकजम्]** आपके चरणकमलों को **[आसाद्य अपि]** पाकर भी **[प्रणिधानवन्ध्यः]** उनके ध्यान से रहित हुआ मैं **[वन्ध्यः अस्मि]** अभागा-फलहीन हूँ, और **[तत्]** उससे **[हा]** खेद है कि **[हतः अस्मि]** नष्ट हुआ जा रहा हूँ। अर्थात् कर्म मुझे दुःखी कर रहे हैं।

O the purifier of the world! O the protector of the home to innumerable finest objects! O the benefactor of those who have taken refuge in you! The strength of your Lotus-Feet to destroy the karmic-foes is well-known! Even after getting access to such Lotus-Feet, not being able to meditate on these, I am becoming wretched and miserable. And, due to this, I am unfortunately getting ruined. The idea is that the karmas are still making me miserable.

देवेन्द्रवन्द्य! विदिताखिलवस्तुसार!
संसारतारक! विभो! भुवनाधिनाथ!
त्रायस्व देव! करुणाह्लद! मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ।।४१।।

अन्वयार्थ - [**देवेन्द्रवन्द्य!**] हे इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय! [**विदित अखिल वस्तुसार!**] हे सर्व पदार्थों के सार (रहस्य) को जानने वाले! [**संसारतारक!**] हे संसार-समुद्र से तारने वाले! [**विभो!**] हे प्रभो। [**भुवनाधिनाथ!**] हे तीन लोक के स्वामिन्! [**करुणाह्लद!**] हे करुणा के सरोवर! [**अद्य**] आज, [**देव!**] हे देव! [**सीदन्तम्**] दुःखों से पीड़ित [**माम्**] मुझको [**भयदव्यसनाम्बुराशेः**] भयंकर आपदाओं के समुद्र से [**त्रायस्व**] बचाओ, और [**पुनीहि**] पवित्र करो।

O the one worshipped by the Indras! O the knower of the essence of all substances! O the rescuer from the ocean of the worldly-existence! O the Supreme Lord! O the Lord of the three worlds! O the reservoir of compassion! I am being tormented by the (worldly) miseries; today, O God! save me from the sea of terrifying calamities, and purify me.

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां
भक्ते फलं किमपि सन्ततसंचितायाः ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य! भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२॥

अन्वयार्थ – [**नाथ!**] हे नाथ! [**त्वदेकशरणस्य मे**] केवल आपकी ही शरण है जिसको, ऐसे मुझे [**सन्ततसंचितायाः**] चिरकाल से अथवा निरन्तर सञ्चित की हुई [**भवदङ्घ्रिसरोरुहाणाम्**] आपके चरण-कमलों की [**भक्ते**] भक्ति का [**यदि**] यदि [**किमपि फलं अस्ति**] कुछ भी फल है [**तत्**] तो उससे [**शरण्य!**] हे शरणागत प्रतिपालक! [**त्वम् एव**] आप ही [**अत्र भुवने**] इस लोक में और [**भवान्तरे अपि**] परलोक में भी [**स्वामी भूयाः**] मेरे स्वामी होवें। (प्रार्थना है कि जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो, आप ही मेरे स्वामी रहें।)

O Lord! I am the one who has taken refuge only in you. O the benefactor of those who have taken refuge in you! In case there is any fruit of the long-term and uninterrupted devotion to your Lotus-Feet, then, you continue to be my Lord in this world as well as hereafter. [The plea is that you continue to be my Lord till I attain liberation *(nirvāṇa)*.]

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र!
सांद्रोल्लसत्पुलककञ्चुकितांगभागाः ।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्या
ये संस्तवं तव विभो! रचयंति भव्याः ।।४३।।

(आर्या छन्द)

जननयनकुमुदचन्द्र! प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ।।४४।।

अन्वयार्थ – [**जिनेन्द्र विभो!**] हे जिनेन्द्र प्रभु! [**ये भव्याः**] जो भव्यजन [**इत्थम्**] इस तरह [**समाहितधियः**] एकनिष्ठ बुद्धि से युक्त हो [**त्वत् बिम्ब निर्मल मुखाम्बुज बद्धलक्ष्या**] आपके निर्मल मुख-कमल पर (अपलक) बाँधा है अपना लक्ष्य जिन्होंने, ऐसे तथा [**सान्द्रः उल्लसत् पुलक कञ्चुकितांग भागाः**] सघन रूप से उठे हुए रोमाञ्चों से व्याप्त हैं शरीर के प्रदेश (अवयव) जिनके, ऐसे (होते हुए) [**विधिवत्**] विधिपूर्वक [**तव**] आपका [**संस्तवम्**] स्तवन [**रचयंति**] रचते हैं अर्थात् करते हैं–

[**जननयन**] हे प्राणियों के नेत्र-रूपी [**कुमुदचन्द्र!**] कुमुदों अथवा कमलों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव! (इसके अतिरिक्त श्लेष अलंकार से इस कृति के कर्ता आचार्य कुमुदचन्द्र का नाम भी सूचित होता है) – [**ते**] वे (भव्यजन) [**प्रभास्वराः**] देदीप्यमान [**स्वर्ग सम्पदः**] स्वर्ग की सम्पदायों को [**भुक्त्वा**] भोग कर, [**मलनिचयाः**] (अष्ट-कर्म रूपी) मल के समूह से [**विगलित**] रहित हो, [**अचिरात्**] शीघ्र ही [**मोक्षम् प्रपद्यन्ते**] मोक्ष को पाते हैं।

O Lord Jinendra! The worthy souls – who, with due

concentration of the mind and aiming (their eyes) uninterruptedly at your Lotus-Face and, further, each space-point of whose bodies is impregnated with intense thrill – if they (such worthy souls) make your adoration in a proper manner, then–

O the glorious Deva, you are like the moon that blossoms forth the petals of the lotuses – *kumudcandra* – represented by the eyes of the worthy souls! [Here, by using the figure of speech *(alaṃkāra)* – equivocation or *śleṣa* – the name of the author, *Ācārya* Kumudacandra, can also be interpreted.] Such (worthy) souls, after enjoying the radiant abundance of the heavens and, subsequently, getting themselves rid of the dirt of the (eight kind of) karmas, soon attain (the blissful stage of) liberation *(mokṣa)*.

॥ इति श्रीकुमुदचन्द्राचार्यप्रणीतं कल्याणमन्दिर स्तोत्रं समाप्तम् ॥

This concludes
Ācārya* Kumudacandra's *Kalyāṇamandira Stotra
– Adoration of Lord Pārśvanātha.

* * *

Victory (Vijay) makes obeisance humble
at the Worshipful Feet of ***Ācārya*** **Kumudacandra** whose
unparalleled composition ***Kalyāṇamandira Stotra***
in adoration of **Lord Pārśvanātha**, the twenty-third
Tīrthaṅkara, has benefitted innumerable souls in this world.

* * *

At the conclusion of this worthy endeavour I adore and
worship the Lotus-Feet of **Lord Pārśvanātha**, the
twenty-third *Tīrthaṅkara,* for continued propitiousness.

Ācārya Guṇabhadra's *Uttarapurāṇa:*

श्रुत्वा यस्य वचोऽमृतं श्रुतिसुखं हृद्यं हितं हेतुम-
न्मिथ्यात्वं दिविजोऽवमीद्विषमिव व्याविद्धवैरोद्धुरम् ।
यं स्तौति स्म च तादृशोऽप्युपनतश्रेयः स पार्श्वो विभु-
र्विघ्नौघं हरिसंधृतासनशिखामध्यास्य सिद्धो हतात् ॥७३ : १६८॥

कानों को सुख देने वाले, हृदय को प्रिय लगने वाले, हित करने वाले और हेतु से युक्त जिनके वचन सुनकर शम्बरदेव ने परम्परागत वैर से उत्कट मिथ्यात्व को विष के समान छोड़ दिया, स्वयं आकर जिनकी स्तुति की और उस प्रकार का क्रूर होने पर भी वह कल्याण को प्राप्त हुआ; तथा जो सिंहासन के अग्रभाग पर विराजमान होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए, ऐसे भगवान् पार्श्वनाथ हमारे विघ्नों के समूह को नष्ट करें।

On hearing the (nectar-like) words – joyful to the ears, pleasant to the heart, beneficial, and purposeful – even Śambaradeva left, like poison, his tradition enmity born out of his wrong-belief *(mithyātva)*. He (Śambaradeva), although cruel, worshipped Lord Pārśvanātha and was blessed. May such Lord Pārśvanātha, seated atop the lion-throne and who attained the state of liberation, destroy all our miseries.

परिशिष्ट-१ **APPENDIX-1**

REFERENCES AND GRATEFUL ACKNOWLEDGMENT

संदर्भ सूची एवं कृतज्ञता ज्ञापन

All that is contained in this book has been excerpted, adapted, or translated into English from a number of authentic Jaina texts. Due care has been taken to conserve the essence of the holy Scripture composed by the ancient preceptors *(pūrvācārya)*.

Contribution of the following publications in preparation of the present volume is gratefully acknowledged:

1. सम्पादक और भाषा-टीकाकार - साहित्याचार्य पं. पन्नालाल शास्त्री 'वसन्त' (1959), **श्रीकुमुदचन्द्र अपरनाम श्रीसिद्धसेन दिवाकर प्रणीत कल्याणमन्दिर स्तोत्र अर्थात् श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र, श्रीचन्द्रकीर्तिकृत संस्कृतटीका**, वीरेन्द्रकुमार देवेन्द्रकुमार जैन, चन्दावाड़ी, सी. पी. टेंक, बम्बई नं. 4, द्वितीय संस्करण.
2. सम्पादक - पं. अभय कुमार शास्त्री, पद्यानुवाद - मुनि अजितसागर (2015), **श्रीकुमुदचन्द्र आचार्य विरचित कल्याण मन्दिर स्तोत्र (कल्याण मन्दिर विधान)**, प्रकाश शोध संस्थान, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण.
3. लेखक - पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद' (वीर नि. सं. 2499), **श्री कुमुदचन्द्राचार्य विरचित कल्याणमन्दिर स्तोत्र**, मोहनलाल जैन शास्त्री, जवाहरगंज, जबलपुर.
4. लेखक - 'श्रीमत्सहजानन्द' महाराज (1963), **कल्याणमन्दिरस्तोत्रम् (श्रीमत्कुमुदचन्द्रमुनिवरविरचितम्),** खेमचन्द जैन सर्राफ रणजीतपुरी, सदर मेरठ.
5. अनुवादक - पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, अनुवादिका - गणिनी आर्यिका श्री स्याद्वादमती माताजी (2004), **पञ्चस्तोत्र संग्रह,** भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्, चतुर्थ संस्करण.
6. सम्पादक - पं. पन्नालाल जैन (1968), **आचार्य गुणभद्र विरचित उत्तरपुराण,** भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, द्वितीय संस्करण.
7. अपभ्रंश मूल सम्पादन - डॉ. पी. एल. वैद्य, हिन्दी अनुवाद - डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन (2003), **महाकवि पुष्पदन्त विरचित महापुराण,** भारतीय ज्ञानपीठ, 18

इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003, द्वितीय संस्करण, पाँचवाँ भाग.

8. डॉ. ए. एन. उपाध्ये एवं सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री (2014), **आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित गोम्मटसार जीवकाण्ड–कर्मकाण्ड,** भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003, छठा संस्करण.
9. भाषानुवादकर्ता – पं. महेन्द्रकुमार 'काव्यतीर्थ' (?), **कविवर भूदरदासजी कृत श्री पार्श्व पुराण,** गजेन्द्र पब्लिकेशन, धर्मपुरा, दिल्ली.
10. सम्पादक एवं अनुवादक – विजय कुमार जैन (2020), आचार्य समन्तभद्र विरचित **स्तुतिविद्या (जिनशतक, जिनस्तुतिशतं),** विकल्प प्रिन्टर्स, देहरादून.
11. Jain, Vijay K. (2015), *"Ācārya Samantabhadra's Svayambhūstotra – Adoration of The Twenty-four Tīrthaṅkara",* Vikalp Printers, Dehradun.
12. Jain, Vijay K. (2023), *"Ācārya Mānatuṅga's Bhaktāmara Stotra – With Hindi and English Rendering",* Vijay Kumar Jain, Dehradun.
13. Jain, Vijay K. (2022), *"Ācārya Pūjyapāda's Bhakti Saṃgraha – Collection of Devotions",* Vikalp Printers, Dehradun.
14. Jain, Vijay K. (2018), *"Ācārya Umāsvamī's Tattvārthasūtra – With Explanation in English from Ācārya Pūjyapāda's Sarvārthasiddhi"*, Vikalp Printers, Dehradun.
15. Radhakrishna, K.E. (Prof.) – English Translation – (2020), *"Sri Bhagavajjinasenacharya - Gunabharacharya Virachitha Jain Mahapurana",* Panditaratna A. Shantiraja Shastri Trust, Bengaluru-560070, Volume 6.

* * *

परिशिष्ट-२ **APPENDIX-2**

ADORATION OF LORD PĀRŚVANĀTHA IN *'SVAYAMBHŪSTOTRA'*

भगवान् पार्श्वनाथ स्तुति - 'स्वयम्भूस्तोत्र'

Excerpted from:
Jain, Vijay K. (2015), *"Ācārya Samantabhadra's Svayambhūstotra – Adoration of The Twenty-four Tīrthaṅkara"*

श्री पार्श्वनाथ जिन
चिह्न - सर्प

Lord Pārśvanātha
Symbol – Snake

23

श्री पार्श्वनाथ जिन

Lord Pārśvanātha

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः ॥

(23-1-131)

सामान्यार्थ - जो उत्कृष्ट धैर्यवान श्री पार्श्वनाथ भगवान् पूर्व-भव वैरी कमठ के द्वारा तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण युक्त, इन्द्रधनुषों सम्बन्धी बिजली-रूपी डोरियों से सहित, भयंकर वज्रपात, आँधी व जलवृष्टि बिखेरने वाले ऐसे शत्रु के वशीभूत मेघों के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर भी परम शुक्लध्यान से चलायमान नहीं हुए थे।

Even after being tormented by the most destructive, enemy-controlled, thunderclouds which were blue as the skin of the Tamāla tree, discharging rainbow-like strings of lightning, terrible thunderbolts, strong winds, and torrential rain, high-minded Lord Pārśvanātha did not deviate from his pure meditation *(śukladhyāna)*.

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसंध्यातडिदम्बुदो यथा ॥

(23-2-132)

सामान्यार्थ – धरणेन्द्र नाम के नागकुमार देव ने जिन उपसर्ग से युक्त भगवान् पार्श्वनाथ को चमकती हुई बिजली के समान पीत कान्ति वाले बड़े-बड़े फणों के मण्डल रूपी मण्डप से उसी प्रकार वेष्टित कर दिया था जिस तरह काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ पर्वत को वेष्टित कर देते हैं।

At the time of the disturbance, the Dharaṇendra deva of the Nāgakumāra class had covered Lord Pārśvanātha with the bower-shaped spread of a large number of serpent-hoods, tawny like the glittering flashes of light, just as the thunderclouds cover the mountain at the fall of the dark night.

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम् ।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥

(23-3-133)

सामान्यार्थ – जिन पार्श्वनाथ भगवान् ने अपने शुक्लध्यान रूपी खड्ग की तीक्ष्ण धार से अत्यन्त दुर्जय मोह-रूपी शत्रु को नष्ट करके, जो अचिन्त्य है तथा आश्चर्यकारक गुणों से युक्त है ऐसे त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान अर्थात् अरिहन्त पद को प्राप्त किया था।

He had destroyed the invincible enemy called delusion *(moha)* with the sharp sword of pure meditation. He attained the excellent status of Arhat which is endowed with unimaginable and astounding qualities, and is worshipped in the three worlds.

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्वश्रमबन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥

(23-4-134)

सामान्यार्थ – जिन पार्श्वनाथ भगवान् के घाति–कर्म रहित महात्म्य को तथा समस्त लोक के ईश्वर के रूप में देखकर वन में रहने वाले तपस्वी भी अपने मिथ्या–तप को निष्फल होता जानकर तथा उनके समान होने की इच्छा करते हुए उनके मोक्षमार्ग के उपदेश की शरण में आए थे।

After seeing his supreme status, free from the four types of inimical karmas, even those ascetics who dwelled in the forest realized the futility of their effort and took refuge in the path to liberation promulgated by Lord Pārśvanātha in order to attain the same supreme status.

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः ॥

(23-5-135)

सामान्यार्थ – जो सत्य विद्याओं व तपस्या का साधन बताने वाले थे, केवलज्ञान के धारक थे, उग्रवंश रूपी आकाश में चन्द्रमा के समान प्रकाशमान थे व जिन्होंने मिथ्या एकान्तमार्ग सम्बन्धी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को अपने अनेकान्त मत से दूर कर दिया था, वे श्री पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर मुझ समन्तभद्र द्वारा सदा प्रणाम किये जाते हैं।

Promulgator of the true learning and austerities, possessor of the infinite knowledge *(kevalajñāna)*, like the moon in the sky of the Ugra dynasty, and destroyer of the dubious outlook of the misbelievers, such Lord Pārśvanātha Jina is constantly worshipped by me (*Ācārya* Samantabhadra).

* * *

परिशिष्ट-३ **APPENDIX-3**

भगवान् पार्श्वनाथ स्तुति - 'स्तुतिविद्या'

उद्धरण-

सम्पादक एवं अनुवादक - विजय कुमार जैन (2020), **आचार्य समन्तभद्र विरचित स्तुतिविद्या (जिनशतक, जिनस्तुतिशतं)**

श्री पार्श्वनाथ जिन

चिह्न - सर्प

प्रथम गणधर - श्री स्वयंभू स्वामी

ॐ श्री पार्श्व-जिन-स्तुतिः ॐ

(मुरजबन्धः)

जयतस्तव पार्श्वस्य श्रीमद्भर्तुः पदद्वयम् ।
क्षयं दुस्तरपापस्य क्षमं कर्तुं ददज्जयम् ॥९९॥

अन्वयार्थ – **[जयतः]** आप कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं। **[श्रीमद्भर्तुः]** आप लक्ष्मी – समवसरण आदि बाह्य और अनन्त-चतुष्टय आदि अन्तरंग – के स्वामी हैं। **[तव]** आप **[पार्श्वस्य]** पार्श्वनाथ भगवान् के **[पदद्वयं]** द्वय-चरण-कमल **[जयं ददत्]** भव्य जीवों को विजय प्रदान करने वाले हैं अर्थात् आपके चरण-कमलों का ध्यान करने वालों को सर्व कार्यों में विजय प्राप्त होती है। **[दुस्तरपापस्य]** आप दुस्तर (कठिन से कठिन) पापों का **[क्षयं]** क्षय **[कर्तुं]** करने के लिये **[क्षमं]** समर्थ हैं। हे भगवन्! आपके चरण-कमल हमारे अज्ञानरूप अन्धकार को नष्ट करें। यहाँ अगले (100वें) श्लोक से **'मम तमः अत्तु'** को ग्रहण किया गया है।

इस श्लोक का मुरजबन्ध-चित्रालंकार इस प्रकार से है-

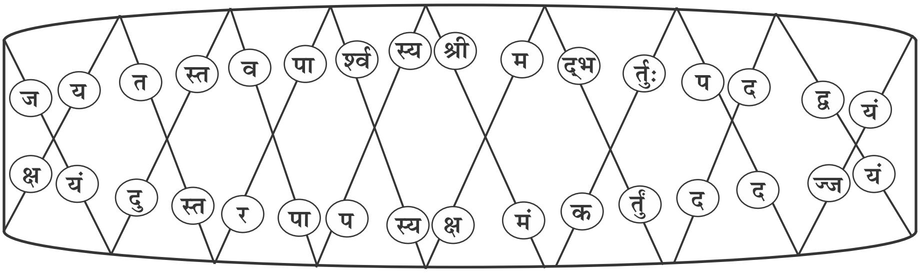

चित्र-८३ (मुरजबन्ध)

(गूढतृतीयचतुर्थानन्तराक्षरद्वयविरचितयमकानन्तरपादमुरजबन्धः)

तमोत्तु ममतातीत ममोत्तममतामृत ।
ततामितमते तातमतातीतमृतेमित ॥१००॥

अन्वयार्थ – हे पार्श्वनाथ भगवान्! **[ममतातीत]** आप ममता–रहित हैं – पर–पदार्थों में 'यह मेरा है' अथवा 'मैं इनका हूँ', ऐसा भाव नहीं रखते। **[उत्तममतामृत]** आपका उत्तम स्याद्वादमय आगम–रूपी अमृत अत्यन्त उत्कृष्ट है। **[ततामितमते]** आपका केवलज्ञान अत्यन्त विस्तृत और अपरिमित (पार–रहित) है। **[तातमत]** आप सबके बन्धु हैं, **[अतीतमृते]** नाशरहित हैं, और **[अमित]** अपरिमित गुणों के धारक हैं। आपके द्वय–चरण–कमल **[मम]** मेरे **[तमः]** अज्ञान–अन्धकार को **[अत्तु]** नष्ट करें। यहाँ पूर्व (99वें) श्लोक से **'पदद्वयं'** को ग्रहण किया गया है।

यह श्लोक गूढ तृतीय–चतुर्थ अनन्तर अक्षर वाला तथा 'त' और 'म' इन दो अक्षरों से निर्मित यमक अनन्तरपाद मुरजबन्ध है। (श्लोक न. 48, 64 और 66 भी देखें)

इस श्लोक का अनन्तरपाद मुरज–चित्रालंकार इस प्रकार से है–

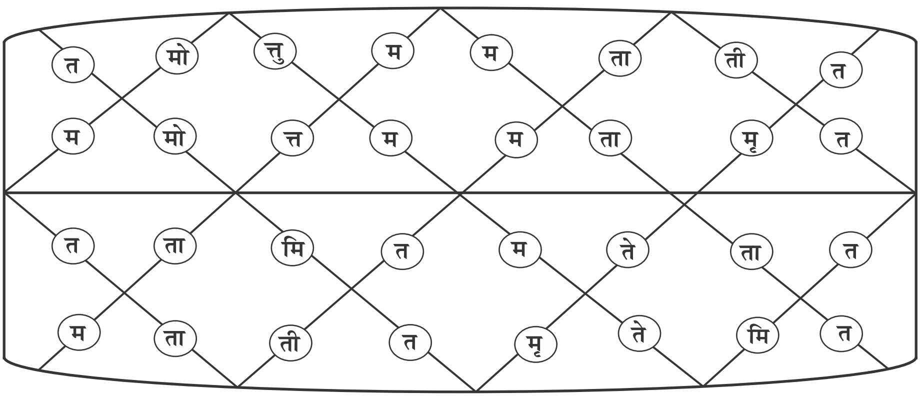

चित्र-८४ (अनन्तरपादमुरजबन्ध)

(मुरजबन्धः)

स्वचित्तपटयालिख्य जिनं चारु भजत्ययम् ।
शुचिरूपतया मुख्यमिनं पुरुनिजश्रियम् ॥१०१॥

अन्वयार्थ – हे पार्श्वनाथ भगवान्! आप **[शुचिरूपतया]** अत्यन्त शुद्ध-स्वरूप हैं, **[पुरुनिजश्रियं]** महान् निज-लक्ष्मी – अनन्त-चतुष्टय – से सम्पन्न हैं, **[मुख्यं]** सबमें मुख्य अर्थात् सबके स्वामी हैं, **[जिनं]** कर्म-रूपी शत्रुओं को जीतने वाले हैं। **[अयं]** यह (आचार्य समन्तभद्र) **[इनं]** आपको इस प्रकार मानकर तथा **[चारु]** सुन्दर रीति से **[स्वचित्तपटे]** स्वकीय चित्तपटल पर **[आलिख्य]** लिखकर अर्थात् अपने चित्त में आपको विराजमान कर, **[भजति]** आपकी आराधना करता है।

हे भगवान्! मैं आपके अत्यन्त शुद्ध-स्वरूप को भली प्रकार से जानकर अपने चित्तपटल पर विराजमान करता हूँ, अपने मन में धारण करता हूँ, निरन्तर आपकी आराधना करता हूँ। जो भव्य-प्राणी आपकी इस प्रकार से आराधना करता है, वह आप जैसा बन जाता है।

इस श्लोक का मुरजबन्ध-चित्रालंकार इस प्रकार से है-

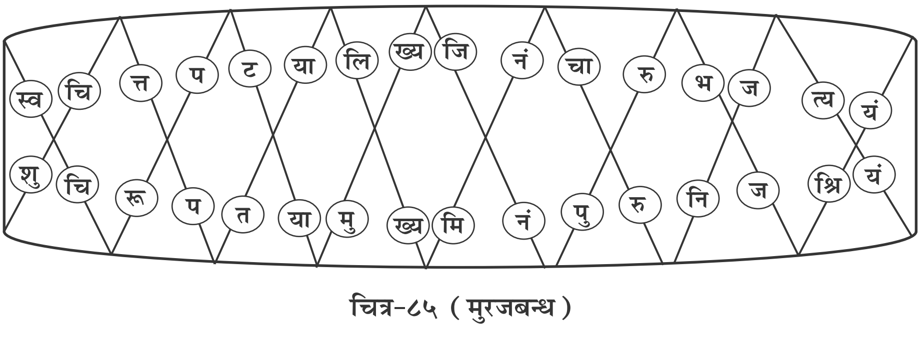

चित्र-८५ (मुरजबन्ध)

* * *

परिशिष्ट-४ **APPENDIX-4**

GUIDE TO TRANSLITERATION

Devanāgarī	*IAST**	*Devanāgarī*	*IAST*	*Devanāgarī*	*IAST*
अ	*a*	घ	*gha*	प	*pa*
आ	*ā*	ङ	*ṅa*	फ	*pha*
इ	*i*	च	*ca*	ब	*ba*
ई	*ī*	छ	*cha*	भ	*bha*
उ	*u*	ज	*ja*	म	*ma*
ऊ	*ū*	झ	*jha*	य	*ya*
ए	*e*	ञ	*ña*	र	*ra*
ऐ	*ai*	ट	*ṭa*	ल	*la*
ओ	*o*	ठ	*ṭha*	व	*va*
औ	*au*	ड	*ḍa*	श	*śa*
ऋ	*ṛ*	ढ	*ḍha*	ष	*ṣa*
ऌ	*ḷ*	ण	*ṇa*	स	*sa*
अं	*ṃ*	त	*ta*	ह	*ha*
अः	*ḥ*	थ	*tha*	क्ष	*kṣa*
क	*ka*	द	*da*	त्र	*tra*
ख	*kha*	ध	*dha*	ज्ञ	*jña*
ग	*ga*	न	*na*	श्र	*śra*

IAST: International Alphabet of Sanskrit Transliteration

✻ ✻ ✻

Sacred Jaina Texts Edited and Translated by Vijay K. Jain

Shri Amritachandra Suri's
Puruṣārthasiddhyupāya

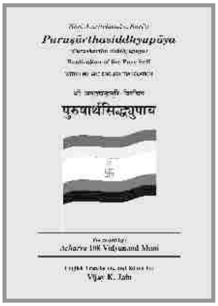

Rs. 350/-

Ācārya Pūjyapāda's
Iṣṭopadeśa

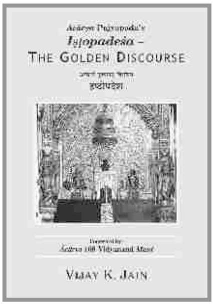

Rs. 450/-

Ācārya Samantabhadra's
Svayambhūstotra

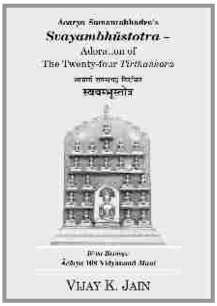

Rs. 500/-

Ācārya Samantabhadra's
Āptamīmāṃsā

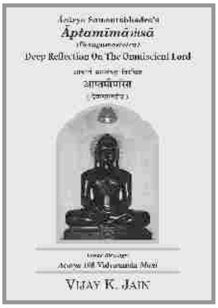

Rs. 500/-

Ācārya Samantabhadra's
Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra

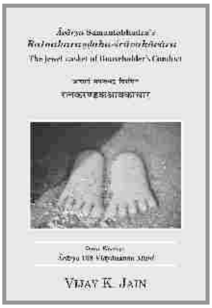

Rs. 500/-

Ācārya Pūjyapāda's
Samādhitantram

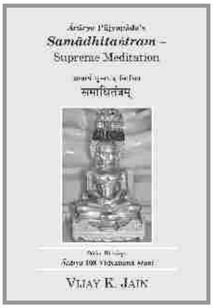

Rs. 600/-

Ācārya Kundakunda's
Pravacanasāra

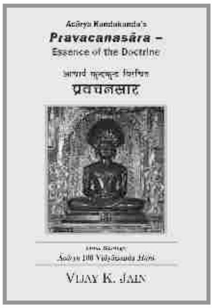

Rs. 600/-

Ācārya Umāsvāmī's
Tattvārthasūtra –
With ***Sarvārthasiddhi***

Rs. 750/-

Ācārya Kundakunda's
Niyamasāra

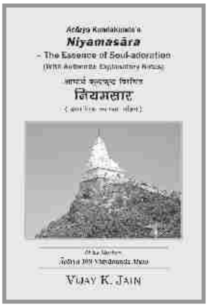

Rs. 600/-

Ācārya Guṇabhadra's
Ātmānuśāsana

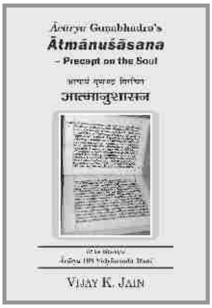

Rs. 600/-

Ācārya Kundakunda's
Pañcāstikāya-saṃgraha

Rs. 750/-

आचार्य समन्तभद्र विरचित
युक्त्यनुशासन

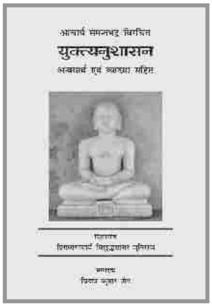

Rs. 500/-

आचार्य समन्तभद्र विरचित
स्तुतिविद्या

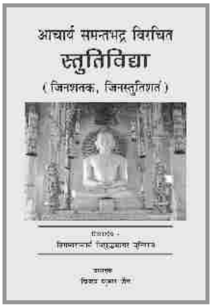

Rs. 500/-

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर
विरचित **सत्यार्थ-बोध**

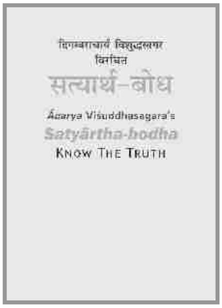

Rs. 600/-

Ācārya Māṇikyanandi's
Parīkṣāmukha Sūtra

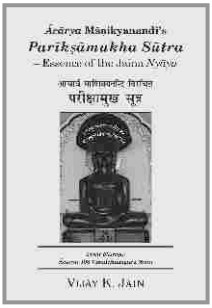

Rs. 800/-

Ācārya Kundakunda's
Bārasa Aṇuvekkhā

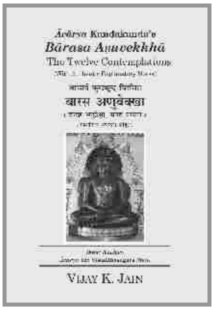

Rs. 800/-

Ācārya Pūjyapāda's
Bhakti Saṃgraha

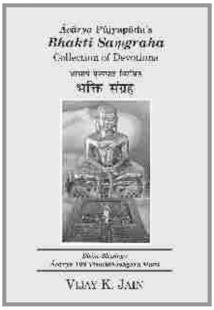

Rs. 600/-

Ācārya Kundakunda's
Samayasāra
(Second Edition)

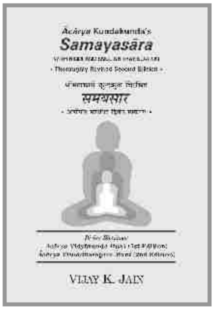

Rs. 800/-

Ācārya (Muni) Nemichandra's
Dravyasaṃgraha
(Second Edition)

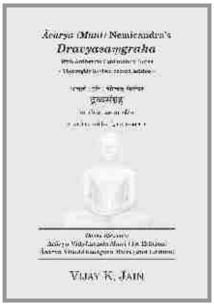

Rs. 800/-

Ācārya Mānatuṅga's
Bhaktāmara Stotra

Rs. 250/-

Ācārya Kundakunda's
Rayaṇasāra
Rs. 750/-

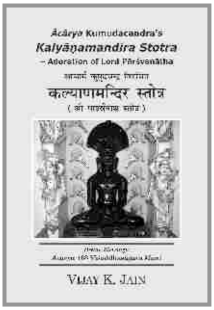

Ācārya Kumudacandra's
Kalyāṇamandira Stotra
Rs. 250/-

ORDERING INSTRUCTIONS

Inland Buyers:

WhatsApp: 9412057845 (Mrs. Sonal Jain Chhabra); 8923114988 (Ms. Malika Jain)

International Buyers:

WhatsApp: +91 8923114988 (Payment Through PayPal)

Email: flytomalika@gmail.com

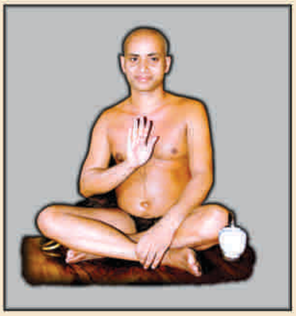

...उसी भक्ति साहित्य की दीर्घा में आचार्यप्रवर कुमुदचन्द्र स्वामी का नाम बहुत ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है, जिन्होंने '**कल्याणमन्दिर स्तोत्र**' लिख कर जगति के भक्त हृदयों को आनन्द प्रदान किया है। इन कवि आचार्य ने भक्ति के माध्यम से नीति-न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म जैसी सर्व विधाएँ अपने स्तोत्र में समाविष्ट की हैं। **कल्याणमन्दिर स्तोत्र** अनुपम स्तोत्र कृति है तथा अनेक चमत्कारों को प्राप्त है।

यह अनुपम स्तोत्र कृति संस्कृत तथा हिन्दी भाषी भक्तों को तो आनन्द प्रदान कर ही रही है, आंग्ल भाषी भक्त हृदय भी इस स्तोत्र के आनन्द सरोवर में निमग्न हो सकें, इस भावना से ओत-प्रोत होकर पञ्चपरमगुरु-भक्ति-हृदय, श्रुताराधक, शान्त-स्वभावी, श्रुतरस-पेयी, आंग्ल भाषा के प्रसिद्ध वरिष्ठ विद्वान् श्री विजय कुमार जैन, देहरादून, ने **कल्याणमन्दिर स्तोत्र** का हिन्दी एवं आंग्ल भाषा में अनुवाद कर विश्व क्षितिज को भक्ति का परम उपहार प्रदान किया है।

वे इसी प्रकार से वागीश्वरी की आराधना में लवनीन रहें और स्व-पर का कल्याण करें, यही शुभाशीष है।...

- दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनि

ISBN 978-93-6076-239-1

9 789360 762391

विकल्प
Vikalp Printers